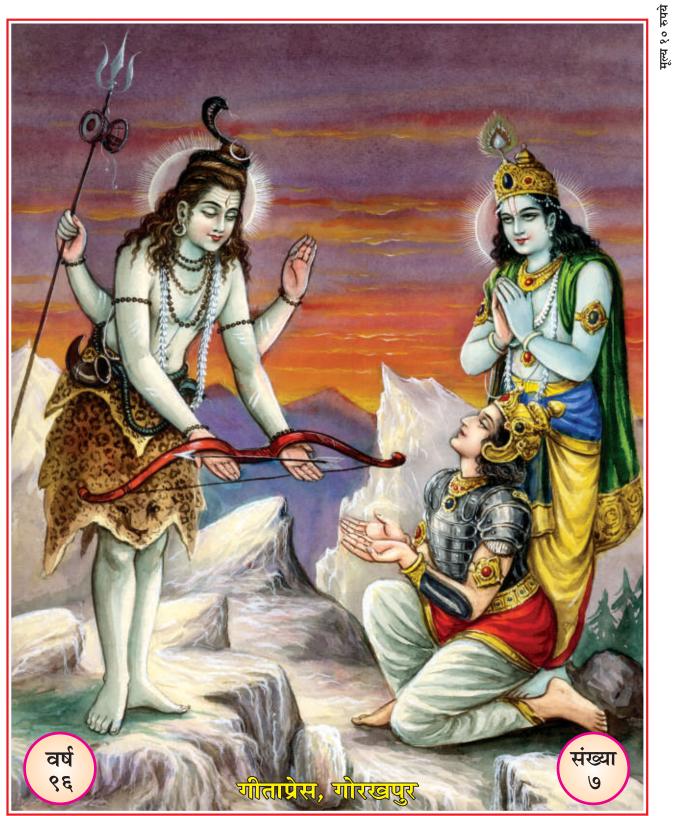
कल्याणा



अर्जुनको पाशुपतास्त्रकी प्राप्ति





ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥



गिरिबर होइ पंगु गहन। मूक बाचाल चढ़इ जासु कृपाँ कलि सो दयाल द्रवउ सकल मल दहन॥

गोरखपुर, सौर श्रावण, वि० सं० २०७९, श्रीकृष्ण-सं० ५२४८, जुलाई २०२२ ई०

पूर्ण संख्या ११४८

ૹ૽ૺ

÷

ૹ૽ૺ

ૹ

÷

÷

ૹ૽

÷

ૹ૽ૺ

÷

संख्या

श्रीराम-लक्ष्मणकी गुरु-सेवा

सभय सप्रेम बिनीत अति सकुच सहित दोउ भाइ। पद पंकज नाइ सिर बैठे आयसु पाइ॥ ÷ संध्याबंदनु मुनि आयसु दीन्हा। सबहीं पुरानी। रुचिर रजनि जुग जाम सिरानी॥ इतिहास कहत જ઼ कीन्हि तब जाई। लगे चरन चापन दोउ ÷ लागी। करत बिबिध जप जोग बिरागी॥ सरोरुह ÷ जनु जीते। गुर पद कमल पलोटत बंध ÷ अग्या दीन्ही। रघुबर जाइ सयन कीन्ही॥ बार मनि तब ÷ उर लाएँ। सभय सप्रेम परम पाएँ॥ सचु चापत चरन लखनु ÷ पुनि पुनि प्रभु कह सोवहु ताता। पौढ़े धरि उर पद ÷ उठे लखनु निसि बिगत सुनि अरुनिसखा धुनि कान। तें पहिलेहिं जगतपति जागे रामु सुजान॥ गुर [श्रीरामचरितमानस]

(संस्करण	। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ १,८०,०००)			
कल्याण, सौर श्रावण, वि० सं० २०७९, श्रीकृष्ण-सं० ५२४८, जुलाई २०२२ ई०, वर्ष ९६—अंक ७ विषय-सूची				
विषय पृष्ठ-संख्या	विषय पृष्ठ-संख्या			
१- श्रीराम-लक्ष्मणकी गुरु-सेवा	१४- प्रसन्तता तो आपके आस-पास ही है (श्रीबलविन्दरजी 'बालम')			
चित्रः	्र -सूची			
१ - अर्जुनको पाशुपतास्त्रकी प्राप्ति (रंगीन) आवरण-पृष्ठ २ - श्रीराम-लक्ष्मणकी गुरुसेवा('') मुख-पृष्ठ ३ - अर्जुनको पाशुपतास्त्रकी प्राप्ति (इकरंगा) ७ ४ - बाली और भगवान् श्रीरामका	५ - श्रीरामका अंगदको लंका भेजना (,,)			
जय पावक रिव चन्द्र जयित जय । सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥				
एकवर्षीय शुल्क ₹२५० जय जिराट् जय जगत्पते विदेशमें Air Mail विषिक USS	ा सत्-। चत्-आनंद भूमा जय जय।। । जय हर अखिलात्मन् जय जय।। । गौरीपति जय रमापते।। 5 50 (`3,000) { Us Cheque Collection }			
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन १ सम्पादक—प्रेमप्र केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्द्भवन-कार्यालय के	द्वेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार काश लक्कड़ लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित			
	n@gitapress.org			
Online सदस्यता हेतु gitapress.org पर Kalyan	य', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें। या Kalyan Subscription option पर click करें। अथवा book.gitapress.org पर नि:शुल्क पढ़ें।			

संख्य	ा ७]						सम्पा	दकीय							ų
<u> </u>	F 5F 5F 5F 5F 5F	£ \$ \$ \$ \$ \$	*****	555555	555555	55555	55555	5555	****	55555	******	555555	£555555	£ 55 55 55	<u> </u>
हरे	राम	हरे	राम	राम	राम	हरे	हरे।	हरे	राम	हरे	राम	राम	राम	हरे	हरे।
हरे	कृष्ण	हरे	कृष्ण	कृष्ण	कृष्ण	हरे	हरे॥	हरे	कृष्ण	हरे	कृष्ण	कृष्ण	कृष्ण	हरे	हरे॥
हरे	राम	हरे	र राम	राम	राम	हरे	हरे।	हरे	राम	हरे	राम	राम	राम	हरे	हरे।
हरे	कृष्ण	हरे	कृष्ण	कृष्ण	कृष्ण	हरे	हरे॥	हरे	कृष्ण	हरे	कृष्ण	कृष्ण	कृष्ण	हरे	हरे ॥
हरे	राम	हरे	राम	राम	राम	हरे	हरे।	हरे	राम	हरे	राम	राम	राम	हरे	हरे।
हरे	कृष्ण	हरे	कृष्ण	कृष्ण	कृष्ण	हरे	हरे॥	हरे	कृष्ण	हरे	कृष्ण	कृष्ण	कृष्ण	हरे	हरे॥
हरे	राम	हरे	राम	राम	राम	हरे	हरे।	हरे	राम	हरे	राम	राम	राम	हरे	हरे।
हरे	कृष्ण	हरे	कृष्ण	कृष्ण	कृष्ण	हरे	हरे॥	हरे	कृष्ण	हरे	कृष्ण	कृष्ण	कृष्ण	हरे	हरे॥
हरे	राम	हरे											राम	हरे	हरे ।
हरे	कृष्ण	हरे					॥ श्रीह						कृष्ण	हरे	हरे ॥
हरे	राम	हरे		प्रायः प्र	ात्येक स	नातनी	के घरमें	पूजा-	-पाठके !	प्रारम्भा	में निम्नित	नखित	राम	हरे	हरे ।
हरे	कृष्ण	हरे	 	बोला उ	ताता है	_							कृष्ण	हरे	हरे॥
हरे	राम	हरे	177		_		_		•				राम	हरे	हरे।
हरे	कृष्ण	हरे		अपवित्र:			वा	सर्वाव		गतोऽपि			कृष्ण	हरे	हरे॥
हरे	राम	हरे		य:	स्मरेत्पुण	डरीकाक्ष	तं स	7	बाह्याभ्यन्त	तरः	शुचि:।		राम	हरे	हरे।
हरे	कृष्ण	हरे		इसका	सामान्य	तः अ	र्थ है रि	के प	वित्र अध	थवा ३	भपवित्र	किसी	कृष्ण	हरे	हरे॥
हरे	राम	हरे		`			-						राम	हरे	हरे ।
हरे	कृष्ण	हरे	भा उ	गवस्थास	हाता	हुआ द	काइ व्य	ाक्त प	जब भग	वान् प्	ुण्डराक	ाक्षका	कृष्ण	हरे	हरे॥
हरे	राम	हरे	स्मरण	ा कर त	नेता है,	तो व	ाह भीत	ार−बा	हरसे पर्ि	वेत्र हं	ो जाता	है।	राम	हरे	हरे।
हरे	कृष्ण	हरे							_				कृष्ण	हरे	हरे॥
हरे	राम	हरे		-			•	-	नाम है।		-		राम	हरे	हरे।
हरे	कृष्ण	हरे	पवित्र	करनेव	ाला हो	ता है,	यह सर	र्वस्वीद्	कृत सगु	ण उप	ासनाकी	दृष्टि	कृष्ण	हरे	हरे॥
हरे	राम	हरे		ार इसव									राम	हरे	हरे।
हरे	कृष्ण	हरे		•						_			कृष्ण	हरे	हरे॥
हरे	राम	हरे		एक अं	रि ज्ञान	दृष्टि र	यह भी	है कि	3 अपने	भीतर	जो सब	कुछ	राम	हरे	हरे।
हरे	कृष्ण	हरे	देखने	वाला द	ष्टा होत	ाट्टी ज	तो भीत	ரி ஆர்	ाव (अर	ਹ) ਫ਼ੈ	ਕਵ ਧਾ	दुरीक ।	कृष्ण	हरे	हरे॥
हरे	राम	हरे	राम हो हो।												
हरे	कृष्ण	हरे	(कमल)-की भाँति संसार-सागर (भव-जल)-में रहकर भी उससे कृष्ण हरे हरे॥												
हरे	राम	हरे	अस्पृष्ट बनी रहती है। उस अपनी भीतरी आँख (अक्ष)-का निरन्तर राम हरे हरे।												
हरे	कृष्ण	हरे	स्मरण करते रहनेसे बाहर-भीतरकी कोई अशुद्धि स्पर्श नहीं कर												
हरे	राम	हरे	स्मरण	। करत	रहनस	बाहर	-भातरव	भा क	गइ अश्	पुद्ध स	पश नह	ा कर	राम	हरे	हरे।
हरे	कृष्ण	हरे	सकर्त	ो। यह	नित्य प	पवित्रीव	क्ररण है	है। ना	रायण ह	हि ।			कृष्ण	हरे	हरे ॥
हरे	राम	हरे		-						_	-सम्पा	_{तक} ।	राम	हरे	हरे।
हरे	कृष्ण	हरे	L								\(\)\-\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\	۲٦٬	कृष्ण	हरे	हरे ॥
हरे	राम	हरे	राम	राम	राम	हरे	हरे ।	हरे	राम	हरे	राम	राम	राम	हरे	हरे ।
हरे	कृष्ण	हरे	कृष्ण	कृष्ण	कृष्ण	हरे	हरे॥	हरे	कृष्ण	हरे	कृष्ण	कृष्ण	कृष्ण	हरे	हरे॥
हरे	राम	हरे	राम	राम	राम	हरे	हरे।	हरे	राम	हरे	राम	राम	राम	हरे	हरे।
हरे	कृष्ण	हरे	कृष्ण	कृष्ण	कृष्ण	हरे	हरे॥	हरे	कृष्ण	हरे	कृष्ण	कृष्ण	कृष्ण	हरे	हरे॥
हरे	राम	हरे	राम	राम	राम	हरे	हरे ।	हरे	राम	हरे	राम	राम	राम	हरे	हरे ।
हरे	कृष्ण	हरे	कृष्ण	कृष्ण	कृष्ण	हरे	हरे ॥	हरे	कृष्ण	हरे	कृष्ण	कृष्ण	कृष्ण	हरे	हरे ॥
हरे	राम	हरे	राम	राम	राम	हरे	हरे ।	हरे	राम	हरे	राम	राम	राम	हरे	हरे ।
हरे	कृष्ण	हरे	कृष्ण	कृष्ण	कृष्ण	हरे	हरे ॥	हरे	कृष्ण	हरे	कृष्ण	कृष्ण	कृष्ण	हरे	हरे ॥
हरे	राम	हरे	राम	राम	राम	हरे	हरे।	हरे	राम	हरे	राम	राम	राम	हरे	हरे।
हरे	कृष्ण	हरे	कृष्ण	कृष्ण	कृष्ण	हरे	हरे॥	हरे	कृष्ण	हरे	कृष्ण	कृष्ण	कृष्ण	हरे	हरे ॥
हरे	राम	हरे	राम	राम	राम	हरे	हरे।	हरे	राम	हरे	राम	राम	राम	हरे	हरे।
हरे	कृष्ण	हरे	कृष्ण	कृष्ण	कृष्ण	हरे	हरे ॥	हरे	कृष्ण	हरे	कृष्ण	कृष्ण	कृष्ण	हरे	हरे॥

कल्याण याद रखो-इस जगत्में जो कुछ है, सबमें मवक्किलको, मवक्किल वकीलको; डॉक्टर-वैद्य रोगीको और रोगी डॉक्टर-वैद्यको; दूकानदार ग्राहकको और भगवान् विराजमान हैं, सब भगवान्के शरीर हैं अथवा सब स्वयं भगवान् ही हैं। यह समझकर सबका सम्मान ग्राहक दुकानदारको; धनी गरीबको और गरीब धनीको

करो, सबका हित करो, सबकी सेवा करो। किसीका भी कभी अपमान न करो, किसीका कभी अहित मत करो, किसीको भी कभी दु:ख मत पहुँचाओ। इस सत्यको सदा स्मरण रखो। केवल साधनाके समय ही नहीं, व्यवहारके समय भी। फिर तुम्हारा प्रत्येक व्यवहार साधन बन जायगा, प्रत्येक कर्मसे तुम भगवानुकी पूजा करोगे; क्योंकि प्रत्येक प्राणी-पदार्थ, जिससे तुम्हारा सम्पर्क

होगा, तुम्हें अपने इष्ट भगवान्के रूपमें ही दिखायी देगा। याद रखो - व्यवहारमें अपने-अपने वेशके अनुसार (वर्णाश्रम, व्यक्ति, सम्बन्ध तथा कर्मके अनुसार नाटकके अभिनयकी भाँति) भेद होगा, पर उस भेदमें भी तुम्हारी दृष्टिमें एक भगवान् ही रहने चाहिये। इस अभ्यासका

आरम्भ पहले अपने घरसे करो। नौकर सामने आया, उसे देखते ही पहचान लो-इस नौकरके रूपमें मेरे आराध्यदेव भगवान् सामने खडे हैं—मन-ही-मन उन्हें प्रणाम कर लो, फिर मन-ही-मन उनसे आज्ञा माँगो, कहो—'भगवन्! आप नौकरके स्वाँगमें हैं और मैं मालिकके। अब आप मुझे आज्ञा दें कि मैं स्वाँगके अनुसार आपके साथ बर्ताव-व्यवहार करूँ, परंतु मेरी प्रार्थना है, नाथ! मैं व्यवहार करते समय यह कभी न भूलूँ कि मेरे सामने नौकरके रूपमें मेरे प्रभू खडे हैं और

मैं अपने प्रत्येक व्यवहारसे उनकी प्रीतिके लिये उनकी पूजा कर रहा हूँ। इसी प्रकार भंगिनसे भेंट हो तो उस भंगिन मैयामें भी भगवान्को पहचानकर मन-ही-मन प्रणाम करो और फिर प्रार्थना करके उसके साथ व्यवहार करो। इसी तरह पत्नी, पति, पुत्र, कन्या, माता-पिता, भाई—सबके साथ यथायोग्य व्यवहार करते हुए प्रभुके

याद रखों - तुम अपने प्रत्येक कर्मसे इस प्रकार

दर्शन करो और उनकी पूजा करो।

भगवानुके रूपमें देखें और उन्हें पहचानकर मन-ही-मन प्रणाम कर लें और प्रार्थना करके व्यवहार करें एवं व्यवहार करते समय यह भूलें नहीं कि मैं भगवानुके

साथ व्यवहार कर रहा हैं। याद रखो-भगवान्की प्रार्थनाके लिये किसी अमुक मन्त्र, श्लोक, छन्द या वाक्योंकी आवश्यकता नहीं है। न नपे-तुले शब्दोंकी जरूरत है। अपनी सरल भाषामें, अपने शब्दोंमें, अपने मनकी वाणीमें दिल खोलकर मनकी बात अपने प्रभुके सामने रखनी चाहिये। हाँ, प्रभुको पहचाननेमें भूल नहीं होनी चाहिये। निरन्तर

बच्चेके प्रति स्नेहसे भरा रहता है, वह शिशुकी उस भाषाको सुनकर और भी प्रसन्न होती है, जिसमें व्याकरणकी अशुद्धि ही नहीं, उच्चारणमें भी अपूर्णता होती है तथा वह माँ बच्चेकी प्रत्येक बातको समझ लेती है। इसी प्रकार भगवान् हमारी विद्वत्ताभरी बाहरी वाणीसे प्रसन्न नहीं होते। वे तो हृदयकी सरलता तथा सचाईसे

भरी अटपटी वाणीपर ही रीझते हैं। इसलिये भगवानुको

नि:संकोच होकर अपनी भाषामें अपनी बात कह दो।

कहना तो इतना ही है कि वे ऐसी शक्ति दें, ऐसी कृपा

करें, जिससे किसीके भी साथ व्यवहार करते समय यह

सबमें प्रभुके दर्शन और सब कार्यींके द्वारा, प्रत्येक

व्यवहारके द्वारा प्रभुका पूजन होते रहना चाहिये। प्रभु

तो स्नेहमयी माँ हैं, जिसका हृदय स्वभावसे ही अपने

स्मरण रहे कि 'इस रूपमें मेरे प्रभु हैं और मैं प्रभुके साथ ही व्यवहार कर रहा हूँ।' याद रखों—ऐसा कर सके तो तुम्हारा जीवन पूजामय जीवन बन जायगा और तुम प्रतिक्षण भगवान्के दर्शन-पूजनका सौभाग्य प्राप्त करके शीघ्र ही सर्वत्र तथा सर्वरूपमें एकमात्र भगवान्की उपलब्धि कर लोगे और यों दिनभर अगुनानको प्रत्यक्ष पुजा कर समुक्ते /हो L वक्तील मुनने प्राप्त सम्बद्धिको सम्बद्धिक अर्थाने । 'शिक्त' आवरणचित्र-परिचय— अर्जुनको पाशुपतास्त्रकी प्राप्ति

अर्जुनको पाशुपतास्त्रकी प्राप्ति

अजुनका पाशुपतास्त्रका प्रााप्त अक्षय तूणीरों)-से सुसज्जित रखना और मेरे पांचजन्यका



संख्या ७]

प्रतिज्ञा की कि 'मैं कल सूर्यास्ततक अभिमन्युकी मृत्युमें कारण बने जयद्रथका वध कर डालूँगा, नहीं तो अग्नि-समाधि ले लूँगा।' जब यह बात कौरव-पक्षमें पहुँची तो कौरवोंके प्रधान सेनापित द्रोणाचार्यने जयद्रथ और दुर्योधनको यह कहते हुए आश्वस्त किया कि 'मैं कल कमल व्यूह बनाऊँगा और जयद्रथ उसमें सुरक्षित रहेगा, अर्जुन वहाँतक पहुँच ही नहीं पायेगा।' इधर कृष्णने सुभद्रा, द्रौपदी और उत्तराको आश्वासन दिया कि पार्थ कल अवश्य ही जयद्रथका वध करेंगे। उन्होंने अर्जुनको अगले दिनके युद्धके

लिये शुभकामना देते हुए उनसे शयन करनेको कहा

और स्वयं अपने शिविरमें चले गये। वहाँ उन्होंने

अपने सारिथ दारुकको बुलाया और कहा कि 'कल युद्ध बड़ा ही भयंकर होगा और मुझे किसी भी

प्रकारसे अर्जुनको सुरक्षित रखते हुए जयद्रथका वध कराना है। मेरे रथको तुम मेरे शस्त्रास्त्रों (सुदर्शन

चक्र, कौमोदकी गदा, नन्दन खड्ग, शार्ङ्ग धनुष एवं

तब भगवान् शंकरने कहा—'हे श्रेष्ठ वीरो! यहाँ निकट ही एक अमृतमय दिव्य सरोवर है, उसीमें मैंने अपना दिव्य धनुष और बाण रख दिया है, उन्हें लेते आओ। शिवजीकी आज्ञासे जब कृष्ण और अर्जुन उस सरोवरपर गये तो वहाँ उन्हें दो महान् नागोंके दर्शन हुए। तब श्रीकृष्ण और अर्जुनने पुन: भगवान् शंकरका शतरुद्रियसे स्तवन किया, जिसके प्रभावसे वे दोनों महानाग धनुष और बाणके रूपमें परिवर्तित हो गये। तब उन दोनोंने लाकर उन्हें भगवान् शंकरको समर्पित कर दिया। तदनन्तर भगवान् शंकरकी पसलियोंसे एक ब्रह्मचारी प्रकट हुआ। उसने वीरासनमें बैठकर उस धनुषपर विधिवत् बाणका संधान किया। अर्जुनने उस क्रियाको ध्यानपूर्वक देखकर हृदयस्थ कर लिया। उस समय भगवान् शंकरने जो मन्त्र पढ़ा, उसको भी उन्होंने याद कर लिया। तब प्रसन्न होकर भगवान् शंकरने अपना पाशुपत नामक घोर अस्त्र अर्जुनको दे दिया। उसे पाकर अर्जुनके हर्षकी सीमा न रही और उन्होंने अपने-आपको कृतकृत्य मानकर भगवान् शंकरको प्रणाम किया और उनकी आज्ञा ले वे अपने शिविरमें वापस लौट गये। इस प्रकार जयद्रथ-वधके पूर्व स्वप्नमें अर्जुनको भगवान् शंकरके दर्शन हुए। [महाभारत]

उद्घोष करनेपर उसे तुरंत मेरे पास ले आना।

भगवान् कृष्ण युद्धकी परिस्थितियोंको समझ रहे

थे, अत: उन्होंने अपनी योगमायाद्वारा अर्जुनकी स्वप्नावस्थामें प्रवेश किया और उन्हें लेकर भगवान् शंकरके दिव्य कैलासलोकको गये और वहाँ उनके दर्शन कराये।

भगवान् शंकर नर-नारायणरूप अर्जुन और श्रीकृष्णको देखकर बहुत प्रसन्न हुए और आनेका कारण पूछा। तब अर्जुन और श्रीकृष्णने उनकी स्तुति की और दिव्य

पाशुपतास्त्रका ज्ञान पुनः देनेका निवेदन किया।

सत्संगकी कुछ सार बातें अनमोल वचन– (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) 🕏 मनुष्य-जीवनके समयको अमृल्य और क्षणिक समझकर उत्तम-से-उत्तम काममें व्यतीत करना चाहिये।

भाग ९६

एक क्षण भी व्यर्थ नहीं बिताना चाहिये।

🕏 यदि किसी कारणवश कभी कोई क्षण भगविच्चन्तनके बिना बीत जाय तो उसके लिये पुत्रशोकसे भी

बढकर घोर पश्चाताप करना चाहिये, जिससे फिर कभी ऐसी भूल न हो।

🕏 जिसका समय व्यर्थ व्यय होता है, उसने समयका मूल्य समझा ही नहीं। 🕸 मनुष्यको कभी निकम्मा नहीं रहना चाहिये, अपित सदा-सर्वदा उत्तम-से-उत्तम कार्य करते रहना

चाहिये।

💲 मनसे भगवानुका चिन्तन, वाणीसे भगवानुके नामका जप, सबको नारायण समझकर शरीरसे

जगज्जनार्दनकी नि:स्वार्थ सेवा—यही उत्तम-से-उत्तम कर्म है।

🕸 बोलनेके समय सत्य, प्रिय, मित और हितभरे शास्त्रानुकुल वचन बोलने चाहिये।

🕸 अपने दोषोंको सुनकर चित्तमें प्रसन्नता होनी चाहिये।

📽 यदि कोई हमारा दोष सिद्ध करे, तो उसके लिये जहाँतक हो, सफाई नहीं देनी चाहिये; क्योंकि सफाई

देनेसे दोषोंकी जड़ जमती है तथा दोष बतलानेवालेके चित्तमें भविष्यके लिये रुकावट होती है। इससे हम निर्दोष

नहीं हो पाते।

🕏 यदि हम निर्दोष हैं तो दोष सुनकर हमें मौन हो जाना चाहिये, इससे हमारी कोई हानि नहीं है और

यदि सदोष हैं तो अपना सुधार करना चाहिये।

🕏 दोष बतलानेवालेका गुरु-तुल्य आदर करना चाहिये, जिससे भविष्यमें उसे दोष बतलानेमें उत्साह हो। 🕸 अपने निकट-सम्बन्धीका दोष सहसा नहीं कहना चाहिये, कहनेसे उसको दु:ख हो सकता है; जिससे

उसका सुधार सम्भव नहीं। 🕏 जीवनको अधिक खर्चीला नहीं बनाना चाहिये। ऋषि-मुनियोंका जीवन खर्चीला नहीं था। अधिक

खर्चीला जीवन मनुष्यको रुपयों और दूसरे पुरुषोंका दास बना देता है, जिसके कारण अनेक पाप करने पड़ते

हैं और दर-दर भटकना पड़ता है।

🕏 भोजनके समय स्वादकी ओर ध्यान नहीं देना चाहिये; क्योंकि वह पतनका हेतू है। स्वास्थ्यकी ओर

लक्ष्य रखना भी वैराग्यमें कमी ही है।

🕏 सोते समय भी भगवानुके नाम-रूपका स्मरण विशेषतासे करना चाहिये, जिससे शयनका समय व्यर्थ

न जाय। शयनके समयको साधन बनानेके लिये सांसारिक संकल्पोंके प्रवाहको भूलाकर भगवानुके नाम, रूप, गुण,

प्रभाव और चरित्रका चिन्तन करते हुए ही सोना चाहिये।

🕏 अपने ऊपर भगवानुकी अहैतुकी दया और प्रेम समझ-समझकर हर समय प्रसन्न रहना चाहिये।

🕏 एकान्तमें मनको सदा यही समझाना चाहिये कि परमात्माके सिवा किसीका चिन्तन न करो; क्योंकि

व्यर्थ चिन्तनसे बहुत हानि है। 🕏 भगवानुके समान अपना कोई भी हितैषी नहीं है, अत: अपने अधीन सब पदार्थींको और अपने-आपको

राजा बलिकी भाँति भगवान्के समर्पण कर देना चाहिये।

संख्या ७] जब अपवित्र विचार घेरते हैं! हमारे आन्तरिक शत्रु जब अपवित्र विचार घेरते हैं! [काम, कारण और निवारण] (श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट) 'नाद रीझि तनु देत मृग!' सुवासित प्राणी-पदार्थींके सम्पर्कमें आनेपर सहज ही कानोंसे मरा भी जा सकता है, तरा भी। कामोद्दीपन हो जाता है। कानोंके चलते भी हम अनेक बार अपवित्र सेण्ट और स्नो, क्रीम और पाउडरकी मादक गन्ध विचारोंके चक्करमें पड जाते हैं। अपवित्र विचारोंको उकसाया करती है। गन्दे गीतों, ठुमरी-टप्पोंने, गन्दे प्रसंगों, विवरणों तभी तो मनु बाबाने आदेश दे रखा है-और गन्दी कहानियोंने, अश्लील चर्चाओंने न जाने वर्जयेन्मधु मांसं च गन्धं माल्यं रसान् स्त्रियः। शुक्तानि यानि सर्वाणि प्राणिनां चैव हिंसनम्॥ कितने व्यक्तियोंको पतनके गर्तमें डुबा दिया। वेश्याओंको गन्दी संगीत-लहरीने न जाने कितने (मनुस्मृति २।१७७) लोगोंको भवसागरमें डुबा दिया। आजकल सिनेमाकी 'ब्रह्मचारीके लिये मधु, मांस, इत्र आदि पदार्थ, संगीत-लहरीने तो चारों ओर सर्वनाशकी आग लगा पुष्पोंकी मालाएँ, चन्दन, रस, स्त्रियाँ, सभी प्रकारके आसव, प्राणियोंकी हिंसा वर्जित है।' रखी है। अश्लील वार्ता शुरू हुई कि पतनका पथ प्रशस्त हुआ। स्निग्ध पदार्थोंको गन्ध हमें ललचाती है। विकृत कानोंका विषय है शब्द। और कृत्रिम, भुने और तले पदार्थींका सोंधापान हमें अपनी ओर आकृष्ट करता है। इनके आकर्षणमें फँसे शब्द हम उत्तम ही ग्रहण करें, बस, समस्या हल है। कि अपवित्र विचारधारा पनपी! कानोंमें सीसा पिघलाकर डालने और बहरे बननेकी जरूरत नहीं। जरूरत है कानोंका सदुपयोग करनेकी। लेकिन इसका मतलब यह तो नहीं ही है कि हम नाकसे कोई काम ही न लें अथवा उसमें रूईका फाहा कानोंसे हम अच्छे शब्द ग्रहण करें, गन्दे नहीं। ठूँसे रहें। पवित्र बातें सुनें, अपवित्र नहीं। जी, नहीं। नाकका हम सदुपयोग करें। ज्ञानवर्धक प्रसंग सुनें, अश्लील प्रसंग नहीं। उससे हम प्राकृतिक पदार्थोंकी गन्ध लें। सोंधी कल्याणकारी बातें सुनें, अहितकर बातें नहीं। मिट्टीकी गन्ध लें। धूप, दीप, नैवेद्य, हवन-सामग्रीकी कामकी बातें सुनें, बेकामकी नहीं। पवित्र गन्ध लें। शुद्ध, सात्त्विक पदार्थोंकी, फल-दूधकी, शाक-कानसे तरनेके लिये तुलसीकी कसौटी है-सब्जी और अंकुरित अन्नकी, अविकृत पदार्थींकी गन्ध लें। कितना धन्य है-जिन्ह के श्रवन समुद्र समाना। कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना॥ भरिं निरंतर होहिं न पूरे। तिन्ह के हिय तुम्ह कहुँ गृह रूरे॥ प्रभु प्रसाद सुचि सुभग सुबासा। सादर जासु लहइ नित नासा॥ और निगोडी जीभ? और नाक? नाक भी कभी-कभी अपवित्र विचारोंको उकसाती है। इसकी शैतानियोंका कहीं पार है? इत्र-फुलेल फुरहरियाँ, गुलाब-केवडेकी खुशबुसे क्या नहीं चाहिये इसे?

हैं—'वाह, कैसी लजीज है यह चीज!' इसकी रसकी पिपासा लाजवाब है। क्या कहने हैं हमारे स्वादके! तभी तो जिसने जीभको वशमें कर लिया, रसनाको सचमुच 'रस+ना' बना लिया, उसने आधा जग जीत प्राकृतिक जीवन बितानेवालोंका दावा है और यह लिया। दावा सोलह आना सही है कि शरीरके पोषणके लिये हमें बहुत थोडे भोजनकी आवश्यकता है। कबीरने कहा है-स्वास्थ्य ठीक रखनेके लिये हम ये सप्त सुत्र याद 'कबिरा' छुधा है कूकरी, करत भजन में भंग। याको टुकड़ा डारि कै, भजन करौ निस्संक॥ रखें तो हमारा काम बन जाय। परंतु शरीररक्षाके लिये जितना चाहिये, केवल उतने (१) खानेको आधा करो, पानीको दुना। भोजनसे कहीं हमारी तृप्ति हो पाती है? कसरतको तिगुना और हँसना चौगुना॥ जीभके चटोरेपनके चलते हम दुनियाभरका पाप तो (२) अन्न और साग, फल और हरी तरकारी बटोरते ही हैं, दूसरोंको भूखों मारते हैं, असंख्य रोगोंको कच्चे रूपमें, अंकृरित करके प्राकृतिक रूपमें ग्रहण करो। न्यौता देते हैं और डॉक्टरोंका बिल बढाते हैं ऊपरसे। आगसे कम-से-कम काम लो। मिर्च, मसाला, तेल, भोजन स्वास्थ्यवर्धक है कि नहीं, उससे आरोग्य खटाई, मिठाईको चौकेसे निकाल दो। घी, तेल, चिकनाईमें सुधरेगा कि नहीं —यह हम नहीं देखते। तली-भूनी चीजें बिलकुल मत खाओ। (३) खटास पैदा करनेवाली चीजें—कार्बोज, हम देखते हैं वह स्वादिष्ट तो है ? चटपटा तो है ? खट्टा और सलोना तो है? प्रोटीन और चिकनाई-कम-से-कम खाओ। (४) रोगसे बचानेवाली चीजें—फल और तरकारियाँ हमें षट्रस व्यंजन चाहिये, स्वास्थ्य जहन्नुममें जाय तो जाय! खूब खाओ। खटाई पैदा करनेवाली चीजोंसे कम-से-कम तिगुनी। यही कारण है कि हमने जीभकी तुष्टिके लिये (५) प्रत्येक कौरको इतना चबाओ कि वह लारके असंख्य वस्तुएँ तैयार कर रखी हैं—पूड़ी और कचौड़ी, साथ मिलकर एक हो जाय। हलुआ और मोहनभोग, रसगुल्ला और गुलाबजामुन, लड्डू (६) केवल इतना खाना खाओ कि पेट न तो और पेड़ा, अचार और मुख्बा, और न जाने क्या-क्या! खाते समय भारी लगे और न खानेके बाद। एक-दो चीजें हैं जो गिनायी जायँ! (७) मादक पदार्थींके पास भी मत फटको। महिलाओंकी इतनी भारी जमात, हलवाइयों और शराब, ताड़ी, गाँजा-भाँग, बीड़ी-सिगरेट ही नहीं, चाय भी मत पियो। होटलवालोंका इतना भारी मेला हमने इसी 'महत्त्वपूर्ण' कामके लिये लगा रखा है कि वे हमारे चटोरेपनको शान्त करनेके लिये भाँति-भाँतिके पदार्थ तैयार करते हमारे शास्त्रोंमें भोजनकी पवित्रतापर, उसकी रहें। सुबह-शाम, दिन-रात, आठ पहर, चौंसठ घड़ी। सात्त्विकतापर जो इतना जोर दिया गया है, वह किस लिये ? केवल इसीलिये कि उससे सात्त्विक विचार उत्पन्न होंगे, पवित्र विचार बनेंगे, जीवन पवित्र बनेगा, बुद्धि नमक, मिर्च, चीनी, मसाला, तेल, डालडा, घी आदिके सहारे हम पदार्थींको स्वादिष्ट बनाते हैं। फिर शुद्ध होगी, रज और तमसे छुटकारा मिलेगा और भी जी नहीं भरता तो हम प्राकृतिक पदार्थींको कई-कई सत्त्वगुणकी वृद्धि होगी। दिनोंतक कभी–कभी महीनोंतक सड़ाते हैं। विकृति जब 'जैसा खावै अन्न, तैसी उपजै बुद्धि।' असिंक्षिपहां इस्ताति। क्ष्ट्रिं, ord Serve से https://dsg.pg/dharma J MADE WITH LOVE BY Avinash/Sha

संख्या ७] जब अपवित्र र्ा	वेचार घेरते हैं! ११
\$	**************************************
द्रव्य संस्कारका, भोजनके पदार्थींका चित्तपर पूरा	त्याज्य नहीं है, उसे ईश्वरकी कृपा समझकर, मनमें भी
संस्कार पड़ता है। शान्त और बुद्धिमान् व्यक्तिको भी	उसकी टीका न करते हुए, सन्तोषपूर्वक शरीरके लिये
कड़ी शराब पिला दी जाय तो वह भी ऊटपटांग बकने	जितना आवश्यक हो, उतना ही खाकर हम उठ जायँ।
लगेगा। इसीलिये यह जरूरी है कि न तो असात्त्विक	वस्तुत: तो आदर्श स्थिति वह है, जिसमें अग्निका खर्च
पदार्थ खाये-पिये जायँ और न ऐसे लोगोंका संग किया	कम-से-कम या बिलकुल न हो।'
जाय, जिनके विचार गन्दे हैं, मलिन हैं, अपवित्र हैं।	× × ×
× × ×	भोजन सात्त्रिक हो, पौष्टिक और सन्तुलित हो,
अर्थात् जीभके रास्ते हम सात्त्विक और पवित्र	अस्वादकी दृष्टिसे बना हो, प्रसन्नतापूर्वक शुद्धतासे
पदार्थ ही पेटमें जाने दें।	बनाया गया हो, उसे हम प्रभु-प्रसादी समझकर प्रसन्न
साथ ही यह भी ध्यान रखें कि ये आवश्यक	मनसे ग्रहण करें।
मात्रासे अधिक न हों।	किंतु केवल इतना ही पर्याप्त नहीं है।
हमारे भोजनमें रबड़ी-मलाई, पूड़ी-कचौड़ी, हलवा,	वह ईमानदारीकी कमाईका भी होना चाहिये।
मोहनभोग तो रहे ही नहीं, रोटी-दाल, शाक-सब्जी,	पवित्र विचारोंके लिये अर्थशुद्धि भी जरूरी है।
फल और दूध भी मात्रासे अधिक न रहे।	× × ×
भोजन पौष्टिक तो हो, सन्तुलित भी हो।	कहते हैं कि एक महात्मा जंगलसे होकर कहीं जा
× × ×	रहे थे।
और, यह तभी सम्भव है, जब हम भोजनसे	रास्तेमें प्यास लगी और सामने ही दीख पड़ा एक कुआँ।
स्वादको निकाल बाहर करें।	रस्सी और बाल्टी भी वहाँ मौजूद थी।
परंतु अस्वाद-व्रतका पालन सरल नहीं है।	महात्माजीने पानी खींचकर पिया और उसे पीते ही
मैंने महीनों नमक छोड़कर देखा है, चीनी छोड़कर	वे सोचने लगे कि क्यों न मैं इस रस्सी-बाल्टीको अपने
देखी है, मिर्च-मसाला, खटाई-अचार छोड़कर देखा है,	साथ रख लूँ। जहाँ प्यास लगेगी, पानी खींचकर पी
फिर भी रसासक्तिसे छुटकारा कहाँ मिल पाया है?	लिया करूँगा।
परंतु जानता हूँ कि रसासक्ति छूटनेका रास्ता यही है।	रस्सी-बाल्टी लेकर चलनेको हुए कि विवेकका
× × ×	उदय हुआ—छि: छि:, मैं यह चोरी कर रहा हूँ!
अस्वादके लिये बापूने सुन्दर कसौटी बतायी है—	बड़ी ग्लानि हुई। हृदयमें ऐसा मलिन भाव आया
'स्वादकी दृष्टिसे किसी भी चीजको चखना व्रतका	तो क्यों?
भंग है।''' जो अनेक चीजें हम खाते हैं, वे शरीर-रक्षाके	कारणका पता लगाने वे जा पहुँचे राजाके दरबारमें
लिये जरूरी न होनेसे त्याज्य ठहरती हैं और यों जो सहज	और राजासे सवाल कर दिया—'महाराज! उस जंगलमें
ही असंख्य चीजोंको छोड़ देता है, उसके समस्त	जो कुआँ बना है, उसमें किसका पैसा लगा है?'
विकारोंका शमन हो जाता है। ''इसके लिये'' सावधानीकी,	राजाने पता लगवाया तो मालूम हुआ कि एक
जागृतिकी बहुत ज्यादा जरूरत है। ऐसा करनेसे कुछ ही	लावारिस सुनारका धन जब्त कर लिया गया था, उसीके
समयमें हमें मालूम होने लगेगा कि हम कब और कहाँ	पैसेसे वह कुआँ बनवाया गया था।
स्वाद करते हैं। मालूम होनेपर हमें चाहिये कि हम अपनी	महात्मा बोले—अवश्य ही उस सुनारने चोरी कर-
स्वादवृत्तिको दृढ़ताके साथ कम करें। इस दृष्टिसे	करके धन जोड़ा होगा, तभी तो उसका पानी पीते ही मेरी
संयुक्तपाक—यदि वह अस्वाद-वृत्तिसे किया जाय—	बुद्धि भ्रष्ट हो गयी और मैं रस्सी-बाल्टी चुराकर चल पड़ा।
बहुत मददगार है। जो कुछ बना है और जो हमारे लिये	× × ×

भाग ९६ एक गृहस्थने एक बार बडी श्रद्धासे साधुओंकी उनके कपोल आदिका स्पर्श कर लिया करते थे— एक टोलीको भोजन कराया। सर्वथा निर्दोषभावसे। सुबह उठे तो सब साधु हैरान! कोई मना करता तो वे उसका मजाक उडाते। उन्हें अपनी निर्विकारताका बडा अभिमान था। रात्रिमें सबको स्वप्नदोष हो गया। गृहस्थको बुलाकर पृछा—बता तो तुने हमें किसलिये स्पर्शद्वारा प्यारकी यह प्रक्रिया जारी रही। भोजन कराया था? और पन्द्रह साल बाद जब भक्तोंकी ये बालिकाएँ सयानी हुईं, तब उनके स्पर्शसे इन बुढ़ऊ ब्रह्मचारीके गिड्गिड्गकर उसने कहा—महाराज! मेरे कोई पुत्र नहीं है। बड़ी इच्छा है कि मेरे पुत्र हो। इसी आशासे मनमें विकार आने लगा और तब उन्होंने अस्पर्श-व्रतकी आपलोगोंको मैंने भोजन कराया था! महत्ता स्वीकार की और प्रतिज्ञा कर ली—ना बाबा, अब ऐसा नहीं करूँगा। स्पर्शसे अपवित्र विचार अपनी पराकाष्ठापर जा आजके सिनेमा-संसारमें अस्पर्श व्रतके विरुद्ध जो अनाचार चल रहा है और भले-भले तरुण-तरुणी इस पहुँचते हैं। छुआ कि गिरे! युवक और युवतीने, पुरुष और स्त्रीने जहाँ नरकाग्निमें अपनेको झोंक रहे हैं, इसका क्या परिणाम होगा! विकारग्रस्त होकर किसीको छुआ कि वासना भड़की वस्तुत: अस्पर्श योगकी साधना हमें दीर्घकालतक और पतन हुआ। बडे-बडे साधु, संन्यासी, योगी, यति, विद्वान्, चलानी होगी। धीरे-धीरे मनको निर्विकार बनाते चलना पण्डित, दार्शनिक, विचारक भी स्पर्श-वासनासे आक्रान्त होगा। यह कठिन अवश्य है, पर असम्भव नहीं। हो जाते हैं और फिर उन्हें नरकमें भी मुश्किलसे ठिकाना बापुने ब्रह्मचर्यकी कसौटी यह बतायी है-'ब्रह्मचर्यका अर्थ यह नहीं कि मैं किसी स्त्रीको मिलता है। स्पर्शसे विकार पलोंमें पनपता है, सेकेण्डोंमें बढ़ता स्पर्श न करूँ, पर ब्रह्मचारी बननेका अर्थ है कि किसी स्त्रीका स्पर्श करनेसे भी मुझमें किसी प्रकारका विकार है और मिनटोंमें गिरा देता है। उत्पन्न न हो, जिस तरह एक कागजको स्पर्श करनेपर शास्त्रोंमें माँ-बहनके साथ भी एकान्तमें बैठनेकी नहीं होता। मेरी बहन बीमार हो और उसकी सेवा करते मनाही की गयी है। पता नहीं, इन्द्रियाँ कब धोखा दे हुए ब्रह्मचर्यके कारण मुझे झिझकना पड़े तो वह ब्रह्मचर्य बैठें! कौन जानता है कि किस क्षण विकार जाग्रत् हो कौड़ी कामका नहीं। जिस निर्विकार दशाका अनुभव हम जायगा, स्पर्शकी आकुलता बढ़ जायगी और मानव मृत शरीरको स्पर्शकर कर सकते हैं, उसीका अनुभव जब पतनके गडहेमें गिर जायगा! हम किसी सुन्दरी-से-सुन्दरी युवतीका स्पर्श करके कर इसलिये स्पर्शसे बचनेकी पूरी सतर्कता रखनी है। सकें, तभी हम सच्चे ब्रह्मचारी हैं।' दूसरोंका ही नहीं, अपने भी विभिन्न अंगोंको बार-बार छूनेसे बचना है। बापू ऐसा कहकर ही नहीं रह गये, जीवनके अन्तिम कोमल शय्या, चिकने और रेशमी वस्त्र, स्निग्ध क्षणतक उन्होंने अपनेको इस कसौटीपर कसा भी। पदार्थ, सुगन्धित साबुन, क्रीम आदि शृंगार-सज्जाके यह 'असिधारा व्रत', ब्रह्मचर्यकी यह अलौकिक प्रसाधन भी विकारोंको भडकाते हैं। उनसे भी दुर साधना, स्थितप्रज्ञताकी यह कठिन चढाई सबके वशकी बात रहनेकी जरूरत है। नहीं। इसलिये सबको ऐसा दुस्साहस करना भी नहीं चाहिये। अपनी शक्ति और सामर्थ्यको देखकर ही इस एक बालब्रह्मचारी अपने भक्तोंके बालक-आगमें हाथ डालना चाहिये। क्षण-क्षणपर पल-पलपर बालिकाओंको गोदमें बैठाकर जब-तब प्यार करते हुए जहाँ गिरनेका खतरा है, वहाँ बहुत सोच-समझकर आगे

संख्या ७] जब अपवि	त्र विचार घेरते हैं! १३
<u></u>	*************************
बढ़नेकी जरूरत है।	युवतीकी वासना पलक मारते उड़ंछू हो गयी।
× × ×	उसके लिये पश्चात्ताप करती हुई वह आकर गिर पड़ी
ज्ञानेन्द्रियोंके सदुपयोगके साथ–साथ हमें कर्मेन्द्रियोंव	n साधुके चरणोंपर!
भी सदुपयोग करना है। किसी भी इन्द्रियको स्वेच्छाचारव	ก์ × × ×
छूट नहीं मिलनी चाहिये।	हमारा अंग-अंग संयममें जकड़ा हो। उसकी मर्यादाएँ
हाथ सत्कर्म ही करें। पैर सत्पथपर ही चलें। वाप	गि बँधी हों। कैसा भी प्रसंग उपस्थित होनेपर हम विचलित न
जो मुखसे निकले वह दूसरोंका हित करनेवाली हो, मी	र्गी हों। फिर तो अपवित्र विचार आयेंगे ही कहाँसे ?
हो। सत्य हो। उससे किसीको उद्वेग न हो।	अंग-अंग हम प्रभुको अर्पित कर दें। हाथ हो, पैर
कर नित करिंह राम पद पूजा। राम भरोस हृदयँ निंह दूजा	हो, नाक हो, कान हो, वाणी हो, जीभ हो—सब प्रभुकी
चरन राम तीरथ चलि जाहीं। राम बसहु तिन्ह के मन माहीं	॥ सेवामें लगा दें।
× × ×	'जो कछु करूँ सो पूजा!'
पूज्य पिताजीने एक बार एक साधुका विवर	ण प्रभु-प्रेममें हम विभोर हो जायँ। सर्वस्व उन्हें ही
सुनाया था।	अर्पण कर दें। धन्य हो उठे हमारा जीवन।
एक व्यापारी जब व्यापारके लिये विदेश जाने लग	T, आतिशे इश्क में जलने का मज़ा तब आये।
तब उसकी नवविवाहिता पत्नीने पूछा—'नाथ, मैं कै	से दिल जले खाक बने, खाक से पैमाना बने॥
रहूँगी, तुम्हारे बिना कामपीड़िता होनेपर क्या करूँगी?'	प्रभुसे हम कह दें—
व्यापारी बोला—मेरी अनुपस्थितिमें तुम उस व्यक्ति	•
बुलाकर अपनी वासनाकी तुष्टि कर सकती हो, जो शौच	Consecrated, Lord! to thee;
लिये सबसे दूर जाता हो।	Take my hands, and let them more
कुछ दिन बाद जब वह व्यापारीकी पत्नी वासना	•
पीड़ित हुई, तब वह छतपरसे वैसे व्यक्तिकी खोज कर	ने
लगी, जैसेके लिये उसका पति कह गया था।	Take my moments and my days,
उसने देखा कि एक साधु है, जो सबसे दूर जा	TI Let them flow in ceaseless praise.
है शौचके लिये।	Take my feet and, and let them be
एक दिन उसने उस साधुको अपने घर बुलाय	
जब भीतर आ गया, तब उसने साधुसे प्रार्थना की—आ	प
ऊपर चले आइये छतपर।	Take my Voice, and let me sing
साधु जैसे ही जीना चढ़ने लगा कि उसव	ন Always, Only for my King,
मिट्टीका कमण्डलु ठेस लगकर टूट गया।	Take my lips, and let them be
साधु तो लगा फुक्का फाड़-फाड़कर रोने।	Filled with messages from Thee.
युवती बोली—जाने दीजिये महाराज! मैं आप	
लिये दूसरा कमण्डलु मँगवा दूँगी। मिट्टीके कमण्डलुव	Take my silver and my gold;
जगह सोनेका कमण्डलु मँगवा दूँगी।	Not a mite would I withhold,
साधु बोला—माँ, कमण्डलु फूटनेका दुःख नः	•
है। दुःख तो इस बातका है कि जीवनमें जो अं	· -
अभीतक केवल एक पात्रको दिखाया था, वह अ	ৰ Take my will, and make it Thine
दूसरेको दिखाना पड़ेगा!	It shall be no longer mine.

दिमाग शैतानका घर।' Take my heart, it is Thine own, हम जो पढे-लिखें, वह पवित्र हो। It shall be Thy Royal Throne. जो देखें-सुनें, वह पवित्र हो। जो छुएँ, जो सुँघें, वह पवित्र हो। Take my love; my Lord! I pour जो कुछ करें, वह पवित्र हो। At Thy feet it Treasure-store. Take myself and I will be विनोबाजीने ठीक ही कहा है—'हम जीवनरूपी Ever, only, all for Thee. लो नाथ, मेरा यह जीवन तुम्हारे चरणोंमें अर्पित है। व्यापार करके संस्काररूपी सम्पत्ति जोड़ते हैं। हमें लो मेरे ये हाथ, तुम्हारे प्रेमका सन्देश ही ये वहन करें। आजसे ही इस बातका विचार करते रहना चाहिये कि लो मेरे जीवनके सारे क्षण। इनमें मैं सदैव तुम्हारी मनपर ऊँचे-से-ऊँचे, सुन्दर-से-सुन्दर संस्कार कैसे स्तुतिका ही गान करता रहूँ। पडें। परंतु अच्छे संस्कारोंके अभ्यासकी पडी किसे है, लो मेरे ये पैर। तुम्हारा आदेश पालन करनेके लिये इससे उलटा, बुरी बातोंका अभ्यास अलबत्ते दिन-रात ही ये सदैव चलते रहें! होता रहता है। जीभ, आँख और कानको हम चटोरपन लो मेरी यह वाणी। इससे मैं सदैव तुम्हारे ही गीत सिखा रहे हैं। अच्छी बातोंकी ओर चित्त लगाना गाया करूँ। चाहिये। उसमें उसे रँग जाना चाहिये।' 'ऐसी चिन्ता रखो कि हमेशा अच्छे ही संस्कार लो मेरे ये होठ। हर समय इनसे तुम्हारा ही सन्देश संगृहीत हों। खराब बात कही, तो पड़ गया उसी क्षण निकला करे। लो मेरा सारा सोना-चाँदी। सारी दौलत तुम्हारे बुरा संस्कार।' चरणोंपर न्यौछावर है। मुझे इसमेंसे कानी कौड़ी भी 'कितने ही बुरे संस्कार गफलतमें पड़ जाते हैं। नहीं चाहिये। नहीं कह सकते वे कब जग पडेंगे। सर्वदा ऐसा ही लो मेरी बुद्धि। जैसा चाहो इसका उपयोग करो। उद्योग करो, जिससे आँख पवित्र रहे, कान निन्दा न सुनें, लो मेरी सारी कामना। मेरी अपनी इच्छा नामकी अच्छा बोलें। संस्कारोंकी दिव्यधारा सारे जीवनमें सतत कोई चीज न रहेगी अब। इसे तुम अपनी बना लो। बहती रहनी चाहिये।' लो मेरा यह हृदय। यह तो तुम्हारा ही है। बना लो इसे अपना सिंहासन। हम रात-दिन, प्रतिक्षण, प्रतिपल शुभ संस्कारोंके लो मेरा प्रेम। इसका खजाना मैं तुम्हारे चरणोंपर लिये सचेष्ट रहें। सर्वेन्द्रिय-संयममें जी-जानसे जुटे रहें। ही लुटा रहा हूँ। परंतु इतना ही पर्याप्त नहीं है। अपवित्र विचारोंसे अन्तमें तुम मुझे ही ले लो। छुटकारा पानेके लिये। 'मैं तेरा हूँ, सदा तेरा रहूँगा बावफा खादिम!' उसके लिये हमें प्रभ्-कृपाकी भी सदैव याचना करते रहनी होगी। मतलब, अपवित्र विचारोंके शिकंजेसे मुक्त होनेके बापूके शब्दोंमें 'रामनामका इकतारा चौबीसों घंटे, लिये हमें सर्वेन्द्रिय-संयमका अभ्यास करना होगा— सोते हुए भी श्वासकी तरह स्वाभाविक रीतिसे चलता आठ पहर चौंसठ घडी। रहना चाहिये।' हम सदैव पवित्र विचारोंका चिन्तन करें। -- और यह तो है ही-Hinatistim Descord Server Attrast. त्रेंपं के अनुसार के निमार कर है कि सम्बद्ध के निमार के अनुसार के अनुसार के संख्या ७] गुरु-तत्त्व गुरु-तत्त्व (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) निष्कपट हो, निर्भय हो, पापोंसे बिलकुल परे हो, संसारका कोई भी कार्य अनुभवी गुरु या जानकार पथ-प्रदर्शकके बिना सहज ही सफल नहीं होता। केवल सदाचारी हो, सादगीसे रहता हो, धर्मप्रेमी हो, जीवमात्रका पुस्तकें पढनेसे काम नहीं चलता, जो मनुष्य उस कार्यको सुहृद् हो और शिष्यको पुत्रसे बढकर प्यार करता हो।' जिनमें ये गुण न हों और निम्नलिखित अवगुण हों, करके सफल हो चुका हो, उसकी सलाह आवश्यक होती है और कठिन कार्य हो तो कुछ दिन उसके पास उन्हें गुरु नहीं बनाना चाहिये-रहकर विनय और सेवासे उसे प्रसन्न रखते हुए उससे 'जो संस्कारहीन हो, वेद-शास्त्रको जानता-मानता सीखना पडता है। जब लौकिक कार्योंका यह हाल है, न हो, कामिनी-कांचनमें आसक्त हो, लोभी हो, मान, तब आध्यात्मिक साधनमें तो गुरुकी बड़ी ही आवश्यकता यश और पूजा चाहता हो, वैदिक और स्मार्त कर्मोंको है। वहाँ तो पद-पदपर गिरनेका डर है। इसलिये प्रत्येक न करता हो, क्रोधी हो, शुष्क या कटुभाषण करता हो, साधकको अनुभवी गुरुके शरण होकर अध्यात्मसाधना असत्य बोलता हो, निर्दयी हो, पढ़ाकर पैसा लेता हो, करनी चाहिये। भारतीय साधनामें गुरु-परम्परा और कपटी हो, शिष्यके धनकी ओर दृष्टि रखता हो, मत्सर गुरुकुलोंका बहुत ऊँचा स्थान है; क्योंकि गुरुके बिना करता हो, नशेबाज, जुआरी या अन्य किसी प्रकारका ज्ञान नहीं होता। गुरु ही आँखें खोलकर हाथमें मसाल व्यसनी हो, कृपण हो, दुष्टबुद्धि हो, बाहरी चमत्कार लेकर, विघ्नोंसे बचाकर शिष्यको लक्ष्यस्थानतक सुखसे दिखलाकर लोगोंके चित्त हरता हो, नास्तिक हो, ईश्वर पहुँचाता है। गुरु और ईश्वरमें कोई भेद नहीं, प्रत्युत और गुरुकी निन्दा करता हो, अभिमानी हो, बुरी संगतिमें शिष्यके लिये तो गुरु ईश्वरसे भी बढ़कर है। यही गुरु-रहता हो, भीरु हो, पातकी हो, देवता, अग्नि और गुरुमें तत्त्व है। श्रद्धा न रखता हो, संध्या-तर्पण, पूजा और मन्त्र आदिके परंतु आजकल सच्चे गुरु प्रायः नहीं मिलते। यथार्थ ज्ञानसे रहित हो, आलसी हो, विलासी हो, धर्महीन हो, संन्यासी होकर त्यागी न हो और गृहस्थ होकर गृहिणी गुरु सदा ही कठिनतासे मिलते थे। फिर आजकल तो बहुत-से लोभी-लालची और कामी-कपटी लोग गुरु रहित हो, शक्तिहीन हो और वृषलीपति हो।' बन गये हैं, इसलिये गुरुवेश कलंकित-सा हो गया है। स्त्रियोंको किसी भी अन्य पुरुषसे दीक्षित होनेकी या किसी पर-पुरुषको गुरु बनानेकी आवश्यकता नहीं है। इसलिये बहुत ही सावधानीसे गुरु बनाना चाहिये। गुरुमें इतने गुण अवश्य होने चाहिये-सिद्धमन्त्र स्वामी अपनी पत्नीको दीक्षा दे सकता है। दीक्षा न दे तो भी पित उसका परम गुरु ही है। 'स्वभाव शुद्ध हो, जितेन्द्रिय हो, धनका लालच जिसे हो ही नहीं, वेद-शास्त्रोंका ज्ञाता हो, सत्य-विधवा स्त्री केवल श्रीपरमात्माको ही गुरु समझकर तत्त्वको पा चुका हो, परोपकारी हो, दयालु हो, नित्य उन्हींका सेवन करे। जो धन और कामिनीका लोभी जप-तपादि साधनोंको स्वयं (चाहे लोक-संग्रहार्थ ही) मालूम हो, ऐसे गुरुसे तो सदा दूर ही रहना चाहिये। करता हो, सत्यवादी हो, शान्तिप्रिय हो, योगविद्यामें इससे यह नहीं समझना चाहिये कि आजकल निपुण हो, जिसमें शिष्यके पापनाश करनेकी शक्ति हो, सदगुरु हैं ही नहीं, उत्कट इच्छा और सच्ची चाह जो भगवान्का भक्त हो, स्त्रियोंमें अनासक्त हो, क्षमावान् होनेपर संसारसागरसे तारनेवाले सद्गुरु अवश्य ही हो, धैर्यशाली हो, चतुर हो, अव्यसनी हो, प्रियभाषी हो, मिलते हैं।

आत्मविजय (साधुवेशमें एक पथिक) स्थानपर बैठे देखकर तथा निरिभमानी समझकर लोग जीवका स्वरूप अहंकार है, अहंकारसे ही अभिमान उत्पन्न होता है, अभिमानसे महत्त्वाकांक्षाका उदय होता उच्च मान देते हैं। त्यागी, तपस्वी, विरक्त और भक्तका वेष त्याग, तप, विरक्ति और भक्ति पूर्ण न होनेके पहले है। वस्तुके संगसे अहंकार और व्यक्तिके संगसे अभिमानका स्फुरण होता है; जीव अहंकारी होकर वस्तुका और अभिमानी ही, धारण कर लेना मानके लिये महत्त्वाकांक्षा नहीं तो होकर व्यक्तिका दास बनता है। वस्तु और व्यक्तिकी और क्या है ? जिन पुरुषोंने कंचन और कामिनीका बड़ी दासता ही अहंकारी और अभिमानी जीवके लिये दु:खका सरलतासे त्याग किया है, वे ही अभिमानवश महत्त्वाकांक्षाके कारण है। जबतक जीवके सामने भिन्न वस्तु रहेगी, लिये रागी एवं द्वेषी होते दीख पड़ते हैं। अभिमानी तबतक वस्तुमय अहंकार रहेगा। और जबतक अपनेसे जीवमें कभी-कभी सीमित महत्त्व-प्राप्तिका इतना लोभ भिन्न व्यक्ति दीख पड़ेगा, तबतक अभिमान रहेगा। बढ़ता है कि सद्गुणसम्पन्न होकर भी वह आसुरी चेहरा अहंकारके लिये अभिमान ही आवरण है। अतएव लगाकर अपने ही साथियोंको धमकाता रहता है, खूनसे वस्तु और व्यक्तिके पीछे रहनेवाले सत्याधारका योग हाथ रँग लेता है। नहीं हो पाता है। सीमित अहंकारमें अभिमानमूलक प्राय: अधिकांश लोग महत्त्वाकांक्षाके लिये इधर-

महत्त्वाकांक्षा रहती है। यह मन्दबुद्धिवाले रोगियोंके उधर दौड़ रहे हैं। साधकोंकी साधना, त्यागियोंका त्याग, कार्यारम्भमें और विचारशीलों, त्यागियों और भद्र पुरुषोंके कार्यान्तमें उन्हें भ्रमित कर देती है। महत्त्वाकांक्षाका मीठा—मोहक नशा तभी उतरता है, जब जीव वस्तु और व्यक्तिकी सीमा पारकर सत्यका अनुभव कर लेता है। अहंकार-शक्तिके द्वारा जो कुछ भी किया जाता है, उसका फल पदार्थ-प्राप्तिसे ऊपर उठनेपर महत्त्व-प्राप्तिका रूप ग्रहण कर लेता है। मनुष्यमें अभिमान जितना ही प्रबल है, उतनी ही उसे दूसरेके दृष्टिकोणकी चिन्ता रहती है। जबतक अभिमान रहता है, तबतक स्तुति और निन्दाके प्रति राग-द्वेषका भाव अक्षुण्ण रहता है। मानकी तृप्तिके लिये ही मानव महत्त्वाकांक्षाकी अगणित सीढ़ियोंपर चढ़ता और फिसलता जा रहा है। अनेक पदों

ही स्थूल और सूक्ष्म रूपमें छिपी रहती है।

संन्यासियोंका संन्यास, पण्डितोंका पाण्डित्य, विरक्तोंकी विरक्ति, तपस्वियोंका तप, हंसोंकी नीर-क्षीर-विवेकी ज्ञान-शक्ति महत्त्वाकांक्षा-पूर्तिके लिये ही बहुत दूरतक है। प्राय: त्यागके मूर्तिमान् स्वरूपसे बने हुए साधु, संन्यासी या विरागीको परम शान्ति अथवा ईश्वरके साक्षात्कारकी प्रतीक्षा इतनी नहीं होती, जितनी रईस या धनी शिष्यको पानेकी उत्कण्ठा होती है। बुद्धिमान् चतुर पुरुष रईसों, राजाओं और पदाधिकारियोंके सम्पर्कमें जाकर मान तथा महत्त्वाकांक्षामें अपने-आपको विरक्त सिद्ध करनेके लिये अच्छी-अच्छी युक्तियोंका प्रश्रय लेते हैं। इस कार्यके लिये उन्हें दोषी ठहराना उचित नहीं दीख पड़ता है। जबतक अहं है, तबतक मानकी भूख और उपाधियोंको महत्त्वाकांक्षाके लिये ही विशेष प्रयत्नसे रहेगी ही। जबतक मानकी इच्छा है, तबतक महत्त्वाकांक्षा ग्रहण करता है तथा अधिकाधिकके लिये उनका त्याग है, मानपर विजय पाना ही वास्तविक आत्मविजय है। कर देता है। देश-कुल-जाति-सेवाके पीछे महत्त्वाकांक्षा मनुष्यकी महत्त्वाकांक्षा ही उसकी सद्गति और परम गतिका कारण है। यदि महत्त्वाकांक्षा न होती तो मनुष्यने एक व्यक्ति मानके लिये ही ऊँचे स्वर्ण-सिंहासनपर सीमितके भीतर ही स्वतन्त्र मानको सब कुछ मान लिया होता, जीवनकी प्रगति रुक जाती। मान और महत्त्वाकांक्षाका बैठनेका पुण्य प्राप्त करता है। दूसरा श्रेष्ठ गुण, विद्या और योग्यतासे सम्पन्न होकर भी सबके पीछे बैठकर यह होना अनुचित और अनिष्टकर नहीं है, अनुचित है सिद्ध करता है कि मुझे अभिमान नहीं है, उसे अयोग्य सीमित मान या महत्त्वाकांक्षाको पाकर भोगी बनना।

िभाग ९६

मानवकी गति मानके रससे अवरुद्ध हो जाती है। तन्मय हो जानेमें है। अहंकारकी गति आत्मासे आरम्भ होती है और उसीमें लीन हो जाती है। महत्त्वाकांक्षाकी महत्त्वको प्राप्तकर मानमें रस लेना ही दरिद्रता है। उसका त्याग करना उदारता है। वस्तुके संगसे गति व्यक्ति-संयोगसे आरम्भ होती है और महत्तत्त्वके अहंकार और व्यक्तिके आगे अभिमान सिद्ध होता है। योगमें लीन हो जाती है। यही परम शान्ति तथा निर्वाण-

पदकी सिद्धि है। इस सिद्धिके लिये आरम्भमें मान और

पदकी प्राप्ति ही जीवनका लक्ष्य होगा। इस लक्ष्यका पूरा हो जाना साधनाका अन्त है, आत्मसाक्षात्कार अथवा

आश्रितका त्याग उचित नहीं

गति, सद्गति और परम गतिका अर्थ यह है कि अहं पहलेकी साधारण वस्तुका संग छोडकर दैवी गुण और

महत्त्वाकांक्षाकी आवश्यकता पडती है। पर उनका भोग स्वभाववाली वस्तुका संगी बने और प्रपंची व्यक्ति करना बाधक है, उनके रसभोगका त्याग करते रहना बदलते हुए दैवी प्रकृतिसम्पन्न व्यक्तिके आगे सम्मानके चाहिये। त्याग परम सिद्धिका मूल है। त्यागकी प्रतीति योग्य बने, इससे दैवी सम्पत्तिकी वृद्धि होगी, यही है न होना ही वास्तविक त्याग है। त्यागकी प्रतीति तभी न होगी, जब अधिकाधिक उच्च और सर्वोपिर महत्-

गतिमें सद्गति। ईश्वरके चरणोंपर अहंको समर्पित कर देना परम गति है।

अहंकारकी प्रगतिकी पराकाष्ठा आत्ममय होनेमें है और मानके लिये महत्त्वाकांक्षाकी पराकाष्ठा परमात्मासे

संख्या ७]

बोध-कथा-

आश्रितका त्याग उचित नहीं

आत्मविजय है।

पाण्डवोंके स्वर्गारोहणके समयकी कथा है। महाराज युधिष्ठिर हिमालयपर चढ़ने गये। द्रौपदी तथा उनके

चारों भाई एक-एक करके बर्फमें गिरकर मर गये। किसी प्रकार साथका एक कुत्ता बच गया था, वही

धर्मराजका अनुसरण करता जा रहा था। उसी समय देवराज इन्द्र रथ लेकर महाराज युधिष्ठिरके सम्मुख उपस्थित

हुए। उन्होंने महाराज युधिष्ठिरको रथपर बैठनेके लिये आज्ञा दी। धर्मराजने कहा—'यह कुत्ता अबतक मेरे साथ चलता आ रहा है। यह भी मेरे साथ स्वर्ग चलेगा।' देवराज इन्द्रने कहा—'नहीं, कुत्ता रखनेवालोंके लिये स्वर्गमें स्थान नहीं है। तुम कुत्तेको छोड़ दो।' इसपर महाराज युधिष्ठिरने कहा—'देवराज! आप यह क्या कह रहे हैं?

भक्तोंका त्याग करना ब्रह्महत्याके समान महापातक बतलाया गया है। इसलिये मैं अपने सुखके लिये इस कुत्तेको किसी प्रकार नहीं छोड़ सकता। डरे हुएको, भक्तको, 'मेरा कोई नहीं है'—ऐसा कहनेवाले शरणागतको, निर्बलको तथा प्राणरक्षा चाहनेवालेको छोडनेकी चेष्टा मैं कभी नहीं कर सकता, चाहे मेरे प्राण भी क्यों न चले

जायँ। यह मेरा सदाका दृढ़ व्रत है। यह सुनकर देवराज इन्द्रने कहा—'हे युधिष्ठिर! जब तुमने अपने भाइयोंको छोड़ दिया, प्यारी धर्मपत्नी द्रौपदीको छोड़ दिया, फिर इस कृत्तेपर तुम्हारी इतनी ममता क्यों है ?' धर्मराजने उत्तर

दिया—'देवराज! उन लोगोंका त्याग मैंने उनके मरनेपर किया है, जीवित-अवस्थामें नहीं। मरे हुएको जीवनदान देनेकी क्षमता मुझमें नहीं है। मैं आपसे फिर निवेदन करता हूँ कि शरणागतको भय दिखलाना, स्त्रीका वध

करना, ब्राह्मणका धन हरण कर लेना और मित्रोंसे द्रोह करना—इन चार प्रकारके पापोंके बराबर केवल एक भक्तके त्यागका पाप है, ऐसी मेरी सम्मति है। अतः मैं इस कुत्तेको किसी प्रकार नहीं छोड़ सकता।

युधिष्ठिरके इन दृढ़ वचनोंको सुनकर साक्षात् धर्म, जो कि कुत्तेके रूपमें विद्यमान थे, प्रकट हो गये। उन्होंने बड़ी प्रसन्ततासे कहा—'युधिष्ठिर! कुत्तेको तुमने अपना भक्त बतलाकर स्वर्गतकका परित्याग कर

दिया। अतः तुम्हारी समता कोई भी स्वर्गवासी नहीं कर सकता। तुमको दिव्य उत्तम गति मिल चुकी।' इस प्रकार साक्षात् धर्मने तथा उपस्थित इन्द्रादि देवताओंने महाराज युधिष्ठिरकी प्रशंसा की और वे प्रसन्नतापूर्वक महाराज युधिष्ठिरको रथमें बैठाकर स्वर्गमें ले गये।

साधकोंके प्रति-कर्तव्य (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज) 😭 मनुष्य प्रत्येक परिस्थितिमें अपने कर्तव्यका असत्-कर्मका परिणाम जन्म-मरणकी प्राप्ति और सत्-पालन कर सकता है। कर्तव्यका यथार्थ स्वरूप है—सेवा कर्मका परिणाम परमात्माकी प्राप्ति है। अर्थात् संसारसे मिले हुए शरीरादि पदार्थींको संसारके 🕯 अच्छे-से-अच्छा कार्य करो, पर संसारको हितमें लगाना। स्थायी मानकर मत करो। 🔅 अपने कर्तव्यका पालन करनेवाले मनुष्यके 🕏 जो निष्काम होता है, वही तत्परतापूर्वक अपने चित्तमें स्वाभाविक प्रसन्नता रहती है। इसके विपरीत कर्तव्यका पालन कर सकता है। अपने कर्तव्यका पालन न करनेवाले मनुष्यके चित्तमें 🕸 दूसरोंकी तरफ देखनेवाला कभी कर्तव्यनिष्ठ हो स्वाभाविक खिन्नता रहती है। ही नहीं सकता, क्योंकि दूसरोंका कर्तव्य देखना ही 🕯 साधक आसक्तिरहित तभी हो सकता है, जब अकर्तव्य है। वह शरीर-इन्द्रियाँ-मन-बुद्धिको 'मेरी' अथवा 'मेरे 🕯 गृहस्थ हो अथवा साधु हो, जो अपने कर्तव्यका लिये' न मानकर केवल संसारकी और संसारके लिये ही ठीक पालन करता है, वही श्रेष्ठ है। मानकर संसारके हितके लिये तत्परतापूर्वक कर्तव्य-🕯 अपने लिये कर्म करनेसे अकर्तव्यकी उत्पत्ति कर्मका आचरण करनेमें लग जाय। होती है। 🕸 वर्तमान समयमें घरोंमें, समाजमें जो अशान्ति, 🕯 अपने कर्तव्य (धर्म)-का ठीक पालन करनेसे कलह, संघर्ष देखनेमें आ रहा है, उसमें मूल कारण यही वैराग्य हो जाता है—'**धर्म तें बिरति'** (मानस है कि लोग अपने अधिकारकी माँग तो करते हैं, पर ३।१६।१)। यदि वैराग्य न हो तो समझना चाहिये कि अपने कर्तव्यका पालन नहीं करते। हमने अपने कर्तव्यका ठीक पालन नहीं किया। 🎎 कोई भी कर्तव्य-कर्म छोटा या बड़ा नहीं होता। 🕯 अपने कर्तव्यका ज्ञान हमारेमें मौजूद है। परंतु छोटे-से-छोटा और बड़े-से-बड़ा कर्म कर्तव्यमात्र समझकर कामना और ममता होनेके कारण हम अपने कर्तव्यका (सेवाभावसे) करनेपर समान ही है। निर्णय नहीं कर पाते। 🕯 चारों वर्णों और आश्रमोंमें श्रेष्ठ व्यक्ति वही है. 🕯 जिससे दुसरोंका हित होता है, वही कर्तव्य होता है। जिससे किसीका भी अहित होता है, वह जो अपने कर्तव्यका पालन करता है, जो कर्तव्यच्युत अकर्तव्य होता है। होता है, वह छोटा हो जाता है। 🕯 राग-द्वेषके कारण ही मनुष्यको कर्तव्य-पालनमें 🕯 संसारके सभी सम्बन्ध अपने कर्तव्यका पालन करनेके लिये ही हैं, न कि अधिकार जमानेके लिये। परिश्रम या कठिनाई प्रतीत होती है। सुख देनेके लिये हैं, न कि सुख लेनेके लिये। 🕯 जिसे करना चाहिये और जिसे कर सकते हैं, उसका नाम 'कर्तव्य' है। कर्तव्यका पालन न करना 🕯 एकमात्र अपने कल्याणका उद्देश्य होगा तो प्रमाद है, प्रमाद तमोगुण है और तमोगुण नरक है-शास्त्र पढे बिना भी अपने कर्तव्यका ज्ञान हो जायगा, **'नरकस्तमउन्नाहः'** (श्रीमद्भा० ११।१९।४३)। परंतु अपने कल्याणका उद्देश्य न हो तो शास्त्र पढ्नेपर 🕏 अपने सुखके लिये किये गये कर्म 'असत्' और भी कर्तव्यका ज्ञान नहीं होगा, उलटे अज्ञान बढ़ेगा कि द्मोक्षेत्रे पहितके Dहिर्यु कि से गये कर्मा 'सत् ' इहोते हुँ dha हम्म जान के हैं DE WITH LOVE BY Avinash/Sha

भगवान् श्रीरामके दत्तक पुत्र (श्रीगोविन्दप्रसादजी मिश्र) विचित्र शीर्षक देखकर पाठक चौंके बिना नहीं अनुराग रहे-रहेंगे। रामने किसे दत्तक पुत्र बनाया और क्यों? उसके जेहिं जोनि जन्मौं कर्म बस तहँ राम पद अनुरागऊँ। दूसरी चाह और है, वह यह कि मैं तो श्रीचरणके लिये प्रमाण क्या है? भगवान् भक्तके वशमें होते हैं और उन्हींकी इच्छा समक्ष होते ही मुक्त हो गया। मेरे तनसे उत्पन्न मेरा तनय पूरी करते आये हैं। यह भी उसी कृपाका उदाहरण है, आज अनाथ हो रहा है, इसकी बाँह पकड़ इसे जो मानसमें ढूँढ़नेसे मिल जाता है। शरणागित दे, आश्रय दे, सनाथ करके अपना दास वीरवर वाली प्राण त्यागनेको तैयार थे, भगवान्को बनाइये— सामने देखकर प्रश्न किया— यह तनय मम सम बिनय बल कल्यानप्रद प्रभु लीजिए। गिंह बाँह सुर नर नाह आपन दास अंगद कीजिऐ॥ बैरी सुग्रीव पिआरा। अवगुन कवन नाथ मोहि मारा॥ भगवान् समुचित उत्तर न दे सके। कहा तुझे कौन इस तरह तन और तनय दोनोंका निपटारा कर-मारता है-सुमन माल जिमि कंठ ते गिरत न जानइ नाग॥ शरीरको छोड़ भगवत्-धामको वालीने प्रयाण कर अचल राखह प्राना । इतना कहकर भगवान्ने— दिया। ताराको इस दत्तक-संस्कारकी प्राथमिक क्रियाका बालि सीस परसेउ निज पानी। पता न होनेके कारण ही वह रुदन करते समय कह रही थी-कहँ कछ् कहन अंगदके लिये वाली वह बात कहकर गया था, जो कोई पिता कभी नहीं कहता। मृत्युलोकमें तो पिताकी मुक्तिका साधन पुत्रको माना गया है, परंतु यह एक ही उदाहरण था, जहाँ अपनी सद्गतिके साथ एक भक्त अपने पुत्रको भी भगवान्के समर्पणकर उनकी गोदमें बैठा गया था।

भगवान् श्रीरामके दत्तक पुत्र

स्वाभिमानी वाली, सुन्दर अवसर पा कहने लगे— जासु नाम बल संकर कासी। देत सबिह सम गति अबिनासी॥ सो नयन गोचर जासु गुन नित नेति कहि श्रुति गावहीं।

नहीं कह पाते-वे समक्ष हैं-

संख्या ७]

जिति पवन मन गो निरस करि मुनि ध्यान कबहुँक पावहीं।। जन्म-जन्म मुनि यत्न करते हैं, अन्त समय राम

कि प्रभु अस बनिहि बनावा?

तनका मुझे मोह नहीं, माँगूँगा यह कि अब

जिस-जिस योनिमें कर्मवश जाना पड़े, आपके श्रीपदसे

वस्तु है।

युवराज बना दिया।

युवराज अंगद और उक्त कार्यको इन्होंने सफल बनाया।

त्रेतामें जिस कार्यको अंगद सम्पन्न करनेको भेजे गये, वह महत्त्वपूर्ण कार्य भगवान् श्रीकृष्णने स्वयं

द्वापरमें किया था। जब सभामें प्रस्ताव रखा गया कि लंकामें सन्धि-

अंगदने तत्काल युवराजपद पाया, भगवान् स्वयं तो

उस दत्तक पुत्रका उपयोग किन महत्त्वपूर्ण

सीता-खोज-कमीशनके चेयरमैन बनाये गये थे

युवराज नहीं बन सके थे; परंतु एक आश्रितको उन्होंने

समयों, अवसरोंपर किया गया, यह भी अध्ययनकी

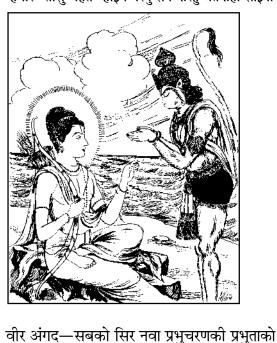
बहुत बुझाइ तुम्हिह का कहऊँ। परम चतुर मैं जानत अहऊँ॥ बालितनय बुधि बल गुन धामा। लंका जाहु तात मम कामा॥ काजु हमार तासु हित होई। रिपु सन करेहु बतकही सोई॥

स्वीकृति दी गयी। भगवान्ने चलते समय विश्वास प्रकट

करते हुए कहा—

प्रस्ताव लेकर अंगद दूतकी तरह जाय, तो सर्वसम्मितिसे भेज रहा था। साधारण मनुष्य फेंकता दस-पाँच हाथ

दूर गिरते—



मत्त गज जूथ महुँ पंचानन चलि जाइ— इस तरह पहुँचे-

यहाँ केवल दो बातें विशिष्ट कीं, जिनसे उनके

हृदयमें रखकर चले। और—

बुद्धि-बलका प्रमाण मिलता है—

हाथका पटकना और पदका रोपना

सारी सभा जमी हुई थी। बात-ही-बातमें हाथ इस

जोरसे पटके कि अविन डोल उठी, रावणसहित सब अपदस्थ हो गये।

कटकटान कपिकुंजर भारी। दुहु भुजदंड तमिक महि मारी॥

डोलत धरिन सभासद खसे। चले भाजि भय मारुत ग्रसे॥ रावणके मुकुट गिर पड़े—उनमेंसे चारको उठाकर

ऐसे फेंका कि भगवान्के समक्ष धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—जा खड़े हुए।

योगी कुयोगीकी राज्यश्री छीनकर आकाशमार्गसे

खड़े हो गये और कहा मेरा पैर कोई भी सरका देगा तो— 'फिरहिं रामु सीता मैं हारी।'

दूसरी कृति भी—सभामें जब कि इस शर्तपर पैर रोपकर

भाग ९६

प्रयत्नके बाद जब कोई तिलभर भी न सरका सका-बलकी परीक्षा हो चुकनेपर बुद्धिकी परीक्षा हुई।

छूनेको ही था कि बोले-'मम पद गहें न तोर उबारा।'

रावण सिंहासनसे उठा और नीचे झुककर पैर

तुम्हारा उद्धार— 'सादर जनक सुता करि आगें।'

दसन गहहुँ तृन कंठ कुठारी। और प्रणतपाल रघुवंशमणिके सामने—

त्राहि माम् त्राहि माम् — चिल्लाते चलो।

भगवान् आर्त वचन सुनकर तुम्हें अभय कर देंगे।

रावण खिसियाकर, अपनी राज्यमणि गँवाकर,

अश्वत्थामा-सा घाव लेकर बैठ गया। बुद्धि और बलकी अनोखी साहसभरी क्षमताकी

ऐसी कहानी मानसमें और किसकी हो सकती थी?

अयोध्यामें भगवानुका राजतिलक हो गया। सबको अपने-अपने घर जानेके आदेश हुए। लक्ष्मणजीने

विभीषणको, भरतजीने सुग्रीवको, नल-नीलको स्वयं

'रे मन! तू क्यों घबराता है' संख्या ७] भगवान्ने वस्त्राभूषण पहना दिये और विदा किया। दत्तक-संस्कारकी अनोखी झाँकी है। अंगद राम बनकर अंगद बैठे रहे, नहीं बोले-प्रीति जानि प्रभु भी चुप रहे। खड़े हैं, राम सब कुछ सौंपकर रीते खड़े हैं। भगवत्-सबके चले जानेके बाद अंगदने भगवान्को प्रणाम कृपाकी इति अभी भी नहीं हुई— किया और सजलनयन होकर बोले-इस तरह राजा रामका दत्तक पुत्र बालितनय, युवराज अंगद बिदा हुआ। सुनु सर्बग्य कृपा सुख सिंधो। दीन दयाकर आरत बंधो॥ भरत अनुज सौमित्रि समेता। पठवन चले भगत कृत चेता॥ मरती बेर नाथ मोहि बाली। गयउ तुम्हारेहि कोंछें घाली॥ हे दीनानाथ! मेरे पिता बाली मरते समय आपके किसीको यह सम्मान नहीं उपलब्ध हुआ था। यह पहला और अन्तिम रामराज्यका अधिकार-प्रदान था। अंचल, गोदमें मुझे डाल गये थे। असरन सरन बिरदु संभारी । मोहि जनि तजहु भगत हितकारी॥ बार बार कर दंड प्रनामा। मोरें तुम्ह प्रभु गुर पितु माता। जाउँ कहाँ तजि पद जलजाता॥ दत्तक पुत्र अंगद अयोध्याके राजमार्गसे रामके वस्त्राभूषण धारण किये पंचानन-पुत्रकी भाँति चले जा रहे थे। तुम्हिह बिचारि कहहु नरनाहा। प्रभुतिज भवन काज मम काहा।। अयोध्यावासी दो राम देख बलिहार हो रहे थे, देव पुष्पवर्षा नीचि टहल गृह कै सब करिहउँ। पद पंकज बिलोकि भव तरिहउँ।। कर रहे थे। एक बार सबको भ्रम हो जाता था, कुछ किसीकी अस कहि चरन परेउ प्रभु पाही। ऐसी करुणाभरी विनयसे भगवानुके नयन सजल हो समझमें न आता था। तुलसीके शब्द इस स्थलपर हैं— गये। सिवा हृदयसे लगा लेनेके भगवान् कुछ न कह सके। कुलिसह चाहि कठोर अति कोमल कुसुमहु चाहि। दोनोंके नेत्रोंसे जलधार बह रही थी और सब स्तब्ध थे। चित्त खगेस राम कर समुझि परइ कहु काहि॥ भगवान्को स्मरण आया, मैं वनमें था, अभी दत्तक और यह था केवल भारतीय दत्तक-विधानका दूसरा विधि अधूरी रही है। दत्तक लेनेपर तो पिता अपने संस्कार, जो किष्किन्धामें नहीं हुआ और अयोध्यामें वस्त्राभूषण उतारकर पहनाता है। केवल पिताओंके सम्पन्न किया गया—तनकी सद्गतिके अनन्तर अवशेष आदान-प्रदानसे विधि पूरी नहीं होती। तनयका सफल जीवन, मुकुटके बदले मुकुट, राज्यश्रीके बदले राज्यश्री देकर सम्पन्न किया। राम-विलोकनि, निज उर माल बसन मनि बालितनय पहिराइ। किस भाग्यशालीको मानसमें ऐसा बड़भाग उपलब्ध बोलिन, चलनी और हँसिमिलनीको बार-बार स्मरण करते हुआ। अपने वसन, निज उर माला, मणिमुक्ता, सिरका हुए गद्गद होते रामके दत्तक-पुत्र अंगद किष्किन्धाको जा रहे हैं—'चलेउ हृदयँ पद पंकज राखी।' पाग—सब सम्पदा सौंप खुद उघारे हो गये—क्या 'रे मन! तू क्यों घबराता है' (श्रीहरि ओमकुमारजी श्रीवास्तव) तू क्यों घबराता है, जब जानकी नाथ वे ही त्रिभुवनके स्वामी हैं, फिर व्यर्थ की चिन्ता काहे दुःखसे क्यों विचलित होता है, दुःख प्रभुकी याद दिलाता दु:खका अनुभव कम करना हो, तो हरिका सुमिरन क्यों न करे। 썅 त्र क्यों घबराता है, जब जानकी नाथ सहाय ÷ जगके भौतिक सुख तो, हैं अनित्य, फिर उनको प्रभुसे क्यों माँगे। जो शाश्वत और अनादि सुख हैं, तू उनकी याचना क्यों न करे। ÷ रे मन! तू क्यों घबराता है, जब जानकी नाथ सहाय ÷ तू काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह के बस में ही क्यों रहता है। ÷ इनसे मुक्ति पानी है, क्यों हरिकी शरण न ग्रहण જ઼ रे मन! तू क्यों घबराता है, जब जानकी नाथ सहाय

गीतामें जीवन-दृष्टि और व्यक्तित्व-विकासके सूत्र

(श्रीप्रभुनारायणजी श्रीवास्तव) हमारे जीवनकी हर घटना अनेक दृश्य एवं अदृश्य सम्पूर्ण पुरुषार्थको परमात्माके साथ जोडनेसे व्यक्तिकी

शक्तियोंसे प्रभावित होती है। किसी भी एक कारणकी इसमें निर्णायक भूमिका नहीं रहती। हमें ऐसा प्रतीत हो

सकता है कि मात्र एक कारण जैसे मेरा पुरुषार्थ अथवा

मेरी दुर्बलताके कारण ही सफलता या असफलता मिलती है। वास्तवमें अनेक ज्ञात-अज्ञात कारणोंके

सम्मिलित प्रभावसे ही किसी घटनाकी सफलता या असफलता घटित होती है। मात्र किसी एक कारणको

सफलता या असफलताके लिये जिम्मेवार मानना अति सरलीकृत मीमांसा कही जायगी। इसे हम निम्न उदाहरणसे समझ सकते हैं—

एवं निद्राकी ओर हमारा ध्यान आकृष्ट कराया है। एक छोटी-सी घटना है-पत्तेका हिलना। पत्ता अहंकारवश यह समझ सकता है कि वह अपनी इच्छासे हिलता है, जबिक स्थिति बिलकुल भिन्न है। पत्ता हिलता तभी है, जब हवा चलती है और हवा चलती बाद मनके संतुलनके लिये भी कार्यक्रम दिया गया है।

तभी है, जब वायुमण्डलमें दबाव-परिवर्तन होता है। दबाव-परिवर्तन तभी होता है, जब तापक्रममें परिवर्तन होता है। तापक्रममें परिवर्तन तभी होता है, जब पृथ्वीका

हिस्सा सूर्यके निकट या दूर होता है और फिर इस

ब्रह्माण्डमें एक नहीं अरबों सूर्य हैं, अनेक ग्रह-नक्षत्र हैं। भूगर्भमें भी सदा छोटे-बड़े विस्फोट होते रहते हैं। इन सबका परिणामी प्रभाव तापक्रममें परिवर्तनका कारण

होता है अर्थात् पत्ता तभी हिलता है, जब ब्रह्माण्ड हिलता है। पत्तेका हिलना अकेली निरपेक्ष घटना नहीं है। प्रकृतिकी इस अन्तर्सम्बद्धताकी अनुभृति हमारे

जीवनकी दृष्टि बदलनेमें सहायक हो सकती है अर्थात्

किसी भी फलके लिये अपने अहंकारमें वृद्धि अथवा कुण्ठामें वृद्धि करना अज्ञानताका परिचायक है। गीता

सुनहरे 'मध्यमार्ग' की प्रेरणा देती है अर्थात् न तो अहंकार और न ही कुण्ठा। इसके लिये योगस्थ शब्दका प्रयोग किया गया है। कई बार इसका गलत अर्थ लगाया

जिससे ऊर्जाका भूमिमें अन्तरण न हो)-का आसन हो, जो न बहुत नीचा और न बहुत ऊँचा हो, अपने आसनका

स्थिर स्थापनकर उसपर बैठकर चित्त और इन्द्रियोंकी

क्रियाओंको वशमें रखते हुए मनको एकाग्र करके अन्त:करणकी शुद्धिके लिये साधक योगका अभ्यास

क्षमतामें अनन्त गुना वृद्धि होती है। वह आलसी नहीं

होता है, बल्कि परम पुरुषार्थी होता है। इसके जीवनमें

जितनी मात्रामें अहंकारशून्यता आती है, परमात्म-तत्त्व उतना ही अधिक मात्रामें अवतरित होता है। फलके प्रति

आसक्ति कम होनेसे कर्मकी गुणवत्ता बढ़ती जाती है।

व्यावहारिक बने, इसके लिये भगवान्ने कार्यक्रम भी

बतलाया है। छठे अध्यायमें इस संतुलन योगके लिये

संतुलित आहार, संतुलित विहार, संतुलित कर्म, चेष्टा

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।

युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा॥

इस कार्यक्रमकी शृंखलाका वर्णन करते हुए भगवान्

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः।

नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम्॥

तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः।

उपविश्यासने युञ्ज्याद्योगमात्मविशुद्धये॥ समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः।

सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन्॥

उत्पादित विद्युत् ऊर्जाके संरक्षणके लिये यह कुचालक है,

'शुद्ध भूमिमें कुश, मृगछाला और वस्त्र (शरीरमें

गीता (६।११—१३)-में कहते हैं—

स्थूल प्रयास, जिससे शरीर संतुलित हो सके, इसके

उपर्युक्त अवस्थाकी प्राप्ति मात्र किताबी न होकर

भाग ९६

करे। काया, सिर और गलेको समान एवं अचल करके, स्थिर होकर अपनी नासिकाके अग्रभागपर दुष्टि जमाकर,

जाता है अर्थात् भाग्यके सहारे बैठकर भाग्यवादी क्रिंमर्थभंक्का प्रोह्त्वानी इक्षाप्तानि संप्रदेशी क्रिंप्सिक्ष प्रमुद्धी विज्ञानि स्वापनी क्रिंप्सिन्न प्रमुद्धी क्रिंप्सिन्न प्रमुद्धी क्रिंप्सिन्न प्रमुद्धी क्रिंप्सिन्न क्रिंप्सिन्न प्रमुद्धी क्रिंप्सिन्न क्रिंप्सिन्न क्रिंप्सिन्न क्रिंप्सिन्न क्रिंपस्था क्रिंप्सिन्न क्रिंप्सिन्न क्रिंप्सिन्न क्रिंप्सिन्न क्रिंप्सिन्न क्रिंप्सिन्न क्रिंप्सिन्न क्रिंप्सिन्न क्रिंप्सिन्न क्रिंपस्था क्रिंपसिन्न क्रिंपसिन क्रिंपसिन्न क्रिंपसिन क्रिंपसिन क्रिंपसिन क्रिंपसिन क्रिंपसिन्न क्रिंपसिन्न क्रिंपसिन्न क्रिंपसिन क्रिंप

संख्या ७] गीतामें जीवन-दृष्टि और	व्यक्तित्व-विकासके सूत्र २३
**************************************	*******************************
शरीर, मन और आत्माके संतुलनके लिये जगह-	जाता है, जिससे हमारी यात्रा हो सके। बिना ऊर्जाके
जगह गीतामें अभ्यास करनेकी ओर ध्यान आकर्षित	कोई यात्रा नहीं हो सकती है। अगर हम यात्रा कर रहे
किया गया है। सतत अभ्याससे यह संतुलन प्राप्त होता	हैं तो उसके रोकनेके लिये उसकी दिशा बदलनेके लिये
है। इसमें जल्दबाजी नहीं है। भगवान् कहते हैं—	भी ऊर्जा चाहिये।
शनैः शनैपरमेतद्बुद्ध्या धृतिगृहीतया।	हमारे अन्दर भी कई ऊर्जा–चक्र हैं। योग इसे
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किंचिदपि चिन्तयेत्॥	विभिन्न नामोंसे पुकारता है। इन शक्ति बिन्दुओंके
'क्रमसे अभ्यास करता हुआ उपरतिको प्राप्त हो	जागरणके लिये ही अनेक प्रकारके प्राणायामका प्रयोग
तथा धैर्ययुक्त बुद्धिके द्वारा मनको आत्मकेन्द्रितकर	ऋषियोंद्वारा किया गया है। इस प्रकार शारीरिक शक्तिका
मनको चलायमान होनेसे रोके।'	जागरण योगासन एवं व्यायामसे, मानसिक शक्तिका
पूर्वजन्मके संचित संस्कारके कारण कुछ लोगोंको	जागरण प्राणायामसे और चित्तकी शक्तिका जागरण
यह समत्व योग जल्दी प्राप्त हो सकता है और कुछको	ध्विन तरंगोंसे अर्थात् मन्त्रोच्चारणद्वारा सम्भव है। ये
विलम्बसे। यह स्तर-भेदके कारण होता है।	सभी अलग-अलग प्रकारके योग हैं—सबकी अलग-
अभ्याससे शारीरिक, मानसिक और आत्मिक	अलग तकनीक है।
क्षमताका उत्तरोत्तर विकास होता है। वैज्ञानिकोंका	ध्वनि-ऊर्जाके प्रभावसे हम परिचित हैं। इन दिनों
कहना है कि हमारे अन्दर जितनी भी क्षमता है,	'ध्विन प्रदूषण' से हो रहे कुप्रभावसे भी हम परिचित
उसमेंसे मात्र ५से १० प्रतिशत क्षमताके उपयोगसे	हैं। योगके द्वारा इसके रचनात्मक प्रयोगपर ऋषियोंने
दैनन्दिन जीवनमें हमारा काम चल जाता है। शेष	शोध किया था। ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटीकी डिलाबार
९० प्रतिशत क्षमता अनुपयोगी बनी रहती है। राममूर्तिकी	प्रयोगशालामें पॉप म्यूजिक एवं शास्त्रीय संगीतके प्रभावका
छाती और हमारी छातीमें कोई मौलिक अन्तर नहीं	अध्ययन किया गया, जिसके अन्तर्गत फसलोंकी एक
है, लेकिन राममूर्तिकी छातीसे कार निकाली गयी,	क्यारीको पॉप म्यूजिक एवं दूसरेको शास्त्रीय म्यूजिक
कुछ नहीं हुआ उन्हें। राममूर्तिसे जब पूछा गया,	सुनाया गया। शास्त्रीय म्यूजिक सुननेवाली क्यारीका
उन्होंने कहा कि इसमें कोई राज नहीं है। आप भी	उत्पादन एवं गुणवत्ता पॉप म्यूजिक सुननेवाली क्यारीसे
कर सकते हैं। राज वही है जो कि कारके टायर-	कई गुणा अधिक हुआ। भारतीय ऋषियोंने 'मन्त्र-
ट्यूबमें होता है। साधारण-सी रबरकी ट्यूबमें हवा	शक्ति' पर बहुत शोध किया है और चित्तवृत्तियोंपर
भरनेसे बड़े-से-बड़े ट्रकको वह चला लेता है। वही	उनके प्रभावका भी अनुमान किया है। बार-बार मन्त्र-
काम हम अपनी छातीमें विशेष अनुपातमें हवा भरकर	जापसे चित्तकी वृत्तियाँ शान्त होती हैं, और इससे
कर लेते हैं। इस प्रकार अपनी शारीरिक क्षमताका	शुभका जन्म होता है।
विकास हम कर सकते हैं।	गुरु-परम्परामें मन्त्र-दीक्षा एवं मन्त्र-जापकी प्रेरणा
योग सोयी हुई ऊर्जाका जागरण करता है। बिना	दी जाती है। अपने-अपने अनुभूत सत्यके आधारपर
ऊर्जाके कोई भी यात्रा सम्भव नहीं है। हाँ, ऊर्जा	मन्त्र-द्रष्टा ऋषियोंने शिष्योंको अलग-अलग प्रकारसे
उत्तरोत्तर सूक्ष्मतर होती जाती है। यान्त्रिक ऊर्जा, फिर	दीक्षा दी है, जिससे व्यक्तिके रूपान्तरणमें गति आती
विद्युत् ऊर्जा, फिर प्रकाश ऊर्जा, ध्विन ऊर्जा—इस	है। ध्वनि ऊर्जाके प्रभावके सम्बन्धमें एक अर्वाचीन
प्रकार धीरे–धीरे ऊर्जा सूक्ष्मतम होती जाती है।	घटनाका उल्लेख करना समीचीन होगा, जब मुसोलिनीने
प्राणायामके माध्यमसे सुप्त ऊर्जाको जाग्रत् किया	संगीत-विशारद श्रीओंकारनाथ ठाकुरसे डाइनिंग टेबुलपर

भाग ९६ कृष्णकी बाँसुरीके जादुई प्रभावपर व्यंग्योक्ति की थी। युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः। श्रीकृष्णकी बाँसुरीसे गायें दुध देती थीं, मयूर नाचते सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते॥ थे, पक्षी चहचहाने लगते थे—मुसोलिनीने इसे कोरा 'पापरहित योगी इस प्रकार निरन्तर अभ्यास करता अन्धविश्वास कहा था। तुरंत ओंकारनाथ ठाकुरने हुआ आत्मा और परमात्माके अभेद स्वरूपको प्राप्तकर टेबलपर बैठे-बैठे कॉॅंटे, चम्मचसे जो स्वर लहरियाँ आनन्दका अनुभव करता है। प्रत्येक मनुष्यके जीवनका लक्ष्य परम सुख, परमानन्दकी प्राप्ति ही है।' निकालीं, उससे मुसोलिनीका सर झूमने लगा—टेबलसे व्यक्तित्व-विकासकी पहली शर्त है-जीवन-ही उसकी टकराहट इतनी तेज हो गयी कि वह लहुलुहान हो गया। फिर ओंकारनाथने अपना संगीत उद्देश्यका निर्धारण। इसके लिये मनुष्यको अपनी प्रकृति बन्दकर उसे राहत दी। मुसोलिनीने अपनी आत्मकथामें एवं प्रवृत्तिको ध्यानमें रखना आवश्यक है। बिना इसको यह लिखवाया है कि मैंने जो कृष्णका मजाक बनाया ध्यानमें रखकर मात्र भौतिक चकाचौंधसे प्रभावित होकर था, उसके लिये क्षमा चाहता हूँ। पश्चिममें अब जीवन-उद्देश्यके निर्धारणसे व्यक्तित्व खण्डित हो जाता 'साउण्ड–इलेक्ट्रोनिक्स' पर बहुत शोध हो रहा है। है, कार्यमें सन्तोष नहीं मिलता और समाजको भी उस ध्वनिशास्त्र चित्तके रूपान्तरणकी अद्भुत कुंजी है, व्यक्तिके प्रकृतिजन्य विशेष गुणोंके लाभसे वंचित रहना जिसकी खोज हजारों वर्ष पूर्व भारतीय ऋषियोंने पड़ता है। अर्जुन भी जब अपनी प्रकृतिकी उपेक्षाकर की थी। भगवान् गीतामें 'जप-यज्ञ' को अपना ही संन्यास-मार्गका अवलम्बनकर युद्धभूमिसे पलायन करना स्वरूप बताते हैं—'यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मिः" यज्ञोंमें चाहता है एवं भ्रमित होकर अपने जीवन-उद्देश्यको ही मैं जप-यज्ञ हूँ अर्थात् जपके द्वारा ध्वनि-तरंगोंसे भूल जाता है, तब भगवान् अर्जुनको सावधान करते हुए आत्मा-परमात्माके द्वैतको हटानेमें सर्वाधिक सहायता गीता (३।३३)-में कहते हैं-सदूशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि। मिलती है। फिर विभिन्न ऋषियोंद्वारा खोजे गये मन्त्रों में प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति॥ 'ॐ' की ध्वनि–तरंगको भगवान्ने सर्वश्रेष्ठ माना है। 'सभी प्राणी प्रकृतिको प्राप्त होते हैं अर्थात् अपने स्वभावके परवश हुए कर्म करते हैं। ज्ञानवान् भी अपनी ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्। प्रकृतिके अनुसार चेष्टा करता है, फिर इसमें किसीका (गीता ८। १३) हठ क्या करेगा।' 'ॐ इस एक अक्षररूप ब्रह्मका उच्चारण करता हुआ मनुष्य परम गतिको प्राप्त होता है।' अपनी मूल प्रकृतिको पहचानने एवं तदनुसार 'ॐ' की ध्वनि-तरंगपर पूरे विश्वमें शोध हो रहा जीवनके उद्देश्यका निर्धारण करनेसे व्यक्तित्वका संतुलित है। स्वामी विवेकानन्दने शिकागोके अपने प्रवासमें इस विकास होता है और समाजको भी इसका लाभ मिलता शब्दकी सर्वोत्तम ऊर्जाका उल्लेख किया है। यह एक है। फिर पूरी गीतामें अर्जुनका मानसिक, बौद्धिक एवं सिद्ध अनुभृति है। कुल मिला-जुलाकर सार-संक्षेप यह शारीरिक उपचार करनेके बाद अठारहवें अध्यायके है कि व्यक्तिको पूर्णतः सन्तुलित करनेके लिये शरीर, ५९वें श्लोकमें उसके खण्डित व्यक्तित्व हो जानेके मन, बुद्धि एवं चित्त-वृत्तियोंको अनुशासित करनेके लिये खतरेकी ओर भगवान् सावधान भी करते हैं— विज्ञानसम्मत पद्धतिका गीतामें वर्णन किया गया है। यदहंकारमाश्रित्य न योतस्य इति मन्यसे। इसके सतत अभ्याससे धीरे-धीरे व्यक्तिका रूपान्तरण मिथ्यैष व्यवसायस्ते प्रकृतिस्त्वां नियोक्ष्यति॥ होता है और पुरुष परम सुखको प्राप्त होता है। 'जो तू अहंकारका आश्रय लेकर यह मान रहा

संख्या ७] गीतामें जीवन-दृष्टि और	व्यक्तित्व-विकासके सूत्र २५
**************************************	<u>********************************</u>
है कि मैं युद्ध नहीं करूँगा, तो तेरा यह निश्चय	स्वयं अपना मित्र है।' 'बन्धुरात्मात्मनस्तस्य
मिथ्या है; क्योंकि तेरा यह स्वभाव तुझे जबरदस्ती	येनात्मैवात्मना जितः' (गीता ६।६) 'जिसने स्वयंके
युद्धमें लगा देगा।'	द्वारा अपनी इन्द्रियोंपर विजय पायी है, वह अपना
अर्जुन कुछ दिनोंतक जंगलमें तपस्या कर सकता	मित्र है।'
है, किंतु उसकी मौलिक प्रकृतिका झोंका जब भी	अपनी मूल प्रकृति जिसके आधारपर हम अपने
आयेगा, वह युद्धके लिये प्रवृत्त हो जायगा। जैसे अगर	जीवनका लक्ष्य निर्धारित कर सकते हैं, को पहचाननेके
उसे अपने भाई या स्वजनकी हत्याका समाचार जंगलमें	लिये आधुनिक युगमें मनोवैज्ञानिककी सहायता ली जा
मिल जाय या कोई शेर, सिंह ही जंगलमें उससे टकरा	सकती है। इसके आधारपर हमारे अन्दर छिपी हुई
जाय तो उसका क्षत्रियत्व बरबस उसे युद्धमें प्रवृत्त कर	प्रतिभाकी क्षमताको विकसित किया जा सकता है। हम
देगा। भगवान् अर्जुनको प्रेमपूर्वक समझाते हैं—	गणितज्ञ बन सकते हैं कि संगीतज्ञ, हम तकनीशियन बन
सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत्।	सकते हैं कि साहित्यकार, हम प्रशासनिक अधिकारी बन
(गीता १८।४८)	सकते हैं कि कुशल श्रमिक, हम अर्थशास्त्री बन सकते
'हे कुन्तीपुत्र! दोषयुक्त होनेपर भी सहज कर्मको	हैं कि दर्शनशास्त्री—यह एक गहन खोज है। इसके
नहीं त्यागना चाहिये।'	लिये मनोवैज्ञानिक जहाँ सहायक हो सकते हैं, वहीं
इस प्रकार जीवन-लक्ष्यके निर्धारणमें क्या सावधानी	स्वयं 'ध्यान' के द्वारा भी हम अपनी खोज कर सकते
बरतनी चाहिये, भगवान्ने इसकी ओर हमारा ध्यान	हैं। मेरा स्वयंका अनुभव है कि सतत ध्यानसे, शान्तिपूर्वक
आकर्षित कराया है। अब प्रश्न यह खड़ा हुआ कि	स्वयंसे सतत जिज्ञासा एवं समर्पण भावसे अपने अन्दरके
अपनी प्रकृतिको कैसे पहचाना जाय? वास्तवमें आज	ईश्वरको जाग्रत् करनेसे हमें इसका एकदम सटीक उत्तर
या किसी भी युगमें अपनी प्रकृतिको पहचानकर	प्राप्त हो सकता है। इसके लिये बाल्यकालसे ही
जीवन-उद्देश्यका निर्धारण बहुत कठिन है। इन्द्रियाँ	जागरूकता प्राप्त करनेका अभ्यास आवश्यक है। यह
एवं उसकी विषयासिक्त इतनी प्रबल है कि जीवात्मा	एक दीर्घकालिक प्रक्रिया है, किंतु हाईस्कूलतक अगर
अपने स्वामीपनको भूल जाता है। किसी घरका नौकर	अभ्यास किया जाय, तो बहुत कुछ दिशा मिल सकती
अगर प्रबल और प्रभावी हो जाय तो उस घरके	है। भगवान् कहते हैं—
मालिककी जो स्थिति होती है, वैसी ही स्थिति उस	ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
व्यक्तिकी होती है, जिसकी इन्द्रियाँ उसका संचालन	भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥
करती हैं। इन्द्रियोंका विषय-सुखमें आकर्षण स्वाभाविक	(गीता १८। ६१)
है, किंतु किस इन्द्रियद्वारा कितनी मात्रामें किस विषयका	'शरीररूपी यन्त्रमें आरूढ़ हुए सम्पूर्ण प्राणियोंको
सेवन किया जाय और किस विषयमें इन्द्रियोंका उपयोग	अन्तर्यामी परमेश्वर अपनी मायासे उनके कर्मके अनुसार
उसके हितमें होगा, इसका निर्णय तो उसके स्वामी	भ्रमण कराता हुआ सब प्राणियोंके हृदयमें स्थित है।'
(जीवात्मा)-को ही करना चाहिये। अत: अपनी	भगवान् आगे कहते हैं कि उस अन्तर्यामी
आत्मशक्तिको बढ़ाना आवश्यक है, जिससे हमारा	परमेश्वरकी शरणमें जानेसे सभी मनोरथ पूरे होंगे।
'स्वामित्व' स्थापित हो। भगवान् कहते हैं—	एक बार जीवन-लक्ष्य निर्धारण होनेके बाद उस
' उद्धरेदात्मनात्मानम् ' 'अपने द्वारा अपना उद्धार करे'	लक्ष्यके प्रति समर्पण किये बिना व्यक्तित्वका विकास
(गीता ६।५)। 'आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुः' 'मनुष्य	नहीं हो सकता है। आजके युगमें भौतिक लक्ष्यके

साथ-साथ जीवनके पराभौतिक लक्ष्यका निर्धारण दोनों 'तत्परता एवं एकीकृत इन्द्रियोंसे ही उद्देश्यके प्रति समर्पण एवं समर्पणसे श्रद्धा पैदा होती है। श्रद्धाके गर्भसे लक्ष्योंको प्राप्त करनेमें सहायक हो सकता है। उदाहरणार्थ यदि हम व्यावसायिक दृष्टिसे इंजीनियर बुद्धि तीक्ष्ण होती है और उत्तरोत्तर ज्ञानकी वृद्धि होती बनना चाहते हों तो साथमें एक अन्य पराभौतिक है। भौतिक, आध्यात्मिक दोनों प्रकारके विकासके लिये रुचि भी विकसित करनी चाहिये। जैसे गायन, भजन, यही सूत्र काम आता है।' सत्साहित्य पठन, लेखन, वक्तृत्व कलाका विकास, सतत अभ्यास ही सफलताकी कुंजी है। उद्देश्यके खेल आदि। भौतिक और आध्यात्मिक विकासकी ध्यान एवं मननसे समस्त इन्द्रियाँ उसकी प्राप्तिमें प्रारम्भिक युगलबन्दी बादमें एकीकृत व्यक्तित्व-विकासमें सहायक बन जाती हैं। जो इन्द्रियाँ व्यक्तिको खण्डित करती हैं, वे ही इन्द्रियाँ अनुशासित होनेपर व्यक्तित्व-सहायक बन सकती है। विकासमें सहायक होती हैं। उद्देश्य-निर्धारणके बाद उस उद्देश्यके प्रति एकाग्र समर्पण आवश्यक है। इसके लिये श्रद्धापूर्वक अभ्यासकी ···वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायत:॥ आवश्यकता है। जितनी श्रद्धा एवं समर्पण होगा, उतनी (गीता ६। ३६) मात्रामें सफलता प्राप्त होगी। यह किसी भी प्रकारके एक विकसित व्यक्तित्ववाले व्यक्तिके २६ लक्षण लक्ष्यकी प्राप्तिके लिये आवश्यक है। मेरा अपना मत है गीतामें बताये गये हैं। ये हैं—अभय, सत्त्वसंशुद्धि कि जबतक भौतिक आवश्यकताकी पूर्ति एवं वासनाओंकी (अन्त:करणकी निर्मलता), ज्ञानकी प्राप्ति, भौतिक पूर्तिकी निरर्थकताका स्वयं अनुभव नहीं होता है, तबतक सम्पदाको दान करनेकी प्रवृत्ति, इन्द्रियोंपर पूर्ण नियन्त्रण, आध्यात्मिक विकासकी बात निरर्थक है और है भी तो स्वार्थरहित कर्म, स्वाध्याय, श्रमसाध्य तप, सहजता, अहिंसा, सत्य, अक्रोध, त्याग, शान्ति, दूसरोंकी निन्दा टिकाऊ नहीं होती है। इसलिये जागरूक होकर सारे अभ्यास किये जाने चाहिये। निर्धारित लक्ष्यके प्रति नहीं करना, प्राणियोंके प्रति दया, लोभ नहीं करना, समर्पणसे ही प्रगति एवं विकास सम्भव है। जैसे लोहेके मधुरता, गलती करनेपर संकोच, निश्चल मन, तेज, टुकड़ेपर बार-बार चुम्बककी रगड़से लोहेके बिखरे अणु क्षमाशीलता, धैर्य, पवित्रता, द्वेष नहीं करना और सिज्जित होकर चुम्बकीय गुणोंसे युक्त हो जाते हैं, वैसे निरहंकारिता। ही उद्देश्यके सतत चिन्तन, मनन एवं अभ्याससे व्यक्तिके गीताके सतत पठन-पाठन, चिन्तन-मननसे धीरे-संस्कार एवं बुद्धिमें परिवर्तन होता है। व्यक्तित्व-धीरे व्यक्तित्वका रूपान्तरण होता है-यह मात्र किताबी ज्ञान न होकर, अनुभूत सत्य है। गीता श्लोकके गायन-विकासमें बुद्धिका महत्त्वपूर्ण योगदान है और जैसी श्रद्धा रहेगी, वैसी ही बुद्धि होगी। गीता (१७।३)-में कहा मात्रसे ध्वनि-तरंगोंका प्रभाव व्यक्तिकी मलिनताओंको साफ करता है, फिर मनन-चिन्तनके साथ अगर इसे गया है-श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छुद्धः स एव सः॥ गाया जाय तो क्या कहना? एक बार चित्तकी वृत्तियाँ 'अर्थात् यह पुरुष श्रद्धामय है। जैसी उसकी श्रद्धा शान्त हुईं, फिर व्यक्तिका विकास तेजीसे होने लगता है। होती है, वैसा वह बन जाता है।' उपनिषद्के ऋषि कहते हैं- 'क्रतुमयोऽयं पुरुषः'-यह पुरुष संकल्पमय है। जितनी मात्रामें उद्देश्य-भगवान् गीता (४। ३९)-में कहते हैं— प्राप्तिका संकल्प बढता है, उतनी मात्रामें सफलता श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः। Hin र्यां is ला वि scoi d रहिन रहिन रेसि हैं । अपने सिल्यां | है MADE WITH LOVE BY Avinash/Sha

िभाग ९६

प्रसन्नता तो आपके आस-पास ही है संख्या ७] प्रसन्नता तो आपके आस-पास ही है (श्रीबलविन्दरजी 'बालम') अपने या किसी अन्यद्वारा किये हुए कार्यसे अनुभूत परोक्ष पड़ी हैं, अलबत्ता, जरूरत है उनको कोशिश, उद्यम, सुख तथा सन्तोषके भावको खुशी कहते हैं। खुशीका परिश्रम, सहृदयता, कर्मठताकी आँखोंसे ढूँढनेकी। जो अभिप्राय आनन्द, हर्ष, प्रफुल्लता, अनुग्रह, कृपा, सन्तुष्टि, मानव खुशियाँ ढूँढ़नेमें विशेषज्ञ होते हैं या संवेदनशील सन्तोष, शान्ति, खिला हुआ, तुष्टि, निर्मलता, स्वच्छ, होते हैं, वे अपने आस-पाससे ख़ुशी ढूँढ लेते हैं। प्रसादयुक्त आदि समझा जा सकता है। खुशीका भाव वातावरणमें खुशियोंका बहुमुल्य परोक्ष तथा प्रत्यक्ष भण्डार अपने विभिन्न मनोरम तत्त्वोंमें होता है। केवल मनमें होनेवाली सुखद अनुभूति, उत्साह बढ़ानेवाला भाव इच्छा आदि है। जरूरत है कि आपको उन तत्त्वोंसे खुशी कैसे ढूँढनी है? जिन्दगी एक तराजू है, जिसके एक पलड़ेमें सुख घरसे ही ले लें; घर माता-पिता, दादा-दादी, पत्नी-तथा दूसरे पलड़ेमें दु:ख है, जो सन्तुलन और असन्तुलनकी पति, बच्चे, पोता-पोती, सास-बह्-ससुर, भाई-बहन, मित्र, क्रियामें प्राप्तियों-अप्राप्तियोंके भारसे नीचे-ऊपर करनेकी रिश्तेदार आदि रिश्तोंकी अद्भुत रचनासे मालामाल (भरपूर) अपनी सामर्थ्यको गतिशील रखता है। खुशियोंका खजाना है, क्या इसको ढूँढ़नेकी जरूरत है! जिन्दगी एक ऐसा भव्य सुगन्धित खिला हुआ रिश्तोंकी प्रत्येक ख्वाहिश (इच्छा)-को मन्दिरके सुमन है, जिसकी सूक्ष्म कोमल पत्तियोंके नीचे नुकीले पुजारीकी भाँति अर्चना-पुजाके थालमें रखकर सच्चे दिलसे, खार (काँटे) अपनी चुभनका भयंकर अहसास करवानेमें सहृदयतासे, एकाग्रताकी माला पहनकर आरती उतारते सदैव ही तत्पर रहते हैं। खूबसूरत सुमन, सुरभि, छुअन जाओ, खुशियोंका प्रसाद आपके पास होगा। एक दिव्यानन्द, तथा काँटेका चुभनमय अहसास ही जीवनकी परिभाषाका लौकिकताकी हकीकतमें आपके मस्तिष्कके गगनमें अनेक सार्थक स्वरूप होता है। ही आशाओंके झिलमिलाते सूर्य, चाँद, सितारे उदय होकर दोस्तो, ख़ुशी किसी भी रूपमें मिले, उसका सीधा रोशनियोंके वन्दनवार दिलोंके दरवाजों (दहलीजों)-के सम्बन्ध दिल-दिमाग तथा जिस्मसे होता है। समस्त ऊपर सजा देंगे। आनन्दकी एक अनुभूति, एक अतिरूप इन्द्रियाँ खुशीके अहसाससे प्रफुल्लित होती हैं। अनेक रोशनी सच्च खण्डकी पर्यायवाची होकर रूहके सुन्दर बीमारियोंकी एक औषधि है खुशी। गुलशनमें भगवत्प्राप्तिका अहसास दे जायगी। खुशी एक ऐसा सूक्ष्म अहसास है, जिसकी जीवनके प्रत्येक तत्त्वमें, प्रकृतिके प्रत्येक तत्त्वमें, आमदसे समस्त इन्द्रियोंके द्वार (पट) अपने-आप खुल ब्रह्माण्डके प्रत्येक तत्त्वमें खुशी छुपी हुई है। जरूरत है जाते हैं और व्यक्ति मन्त्रमुग्ध हो आनन्दकी क्रियाको सुहृदयता, सच, नेकी, आध्यात्मिकता, प्यार, नम्रता, पार करते हुए जिस्मके अन्दरूनी (भीतरी) अंगोंको अभिवादन-अभिनन्दन, संकल्प, प्रण, त्याग, परिश्रम, अन्त-ताजगी, शुद्धता, पूर्णता आदिकी एक अलौकिक शक्ति र्योग, रंग-जाति-पॉॅंतिरहित और अपनेपनका तिनका-तिनका प्राप्त करता है, जिससे मानवकी लम्बी आयुको चार इकट्ठा करके बनाया गया दिलमें एक सूक्ष्म-मजबूत, प्यारा-चाँद लगते हैं। ख़ुशी शरीरको ऊर्जा देती है। सा, किसी इच्छाकी शाखपर झुलता सुन्दर घरोंदा हो। बचपनसे लेकर अन्तिम साँसतक खुशियोंका दारोमदार झूठ, रिश्वत, ठगीठोरी, बेईमानी, अहंकार (अहं) किसी-न-किसी रूपमें चलता रहता है। आदि तत्त्वोंमें खुशी चमककर आती है, परंतु कुछ क्षणों जीवन स्वल्प खुशियोंका अद्भुत भव्य संग्रह है। (पलों)-के लिये और फिर खुदकुशी कर लेती है तथा किसी भी व्यक्तिके पास खुशियोंका सम्पूर्ण आसमान नहीं फिर जिन्दगीकी समस्त क्रियाओंको नरक बना देती है। है कि जब दिल चाहे ख़ुशियोंके आसमानसे सितारा (तारा) जब मानव अपनी सच्ची मेहनत, तन्मय साधना, तोड़ ले। ख़ुशियाँ तो आपके चहुँओर, आपके आस-पास ऊँचे संकल्प, अच्छी योजना, एकाग्र शक्ति आदिसे किसी

भाग ९६ अपनापन, प्राकृतिक सौन्दर्य, तन्दुरुस्ती और स्वर्ग प्राप्ति (उपलब्धि)-की बहुत दूर खड़ी मंजिलको पानेके लिये तत्पर होता है, तो उसकी सारी दिमागी तथा शारीरिक (वैकुण्ठ)-जैसी आनन्दानुभृति प्रदान करती है। शक्ति ईमानदारी एवं संघर्षके नुकीले रास्तोंसे निकलती मैं एक सच्ची घटना आपके साथ साझी करना हुई उसे अपने अस्तित्वमें समेट लेती है, तो एक चिरस्थायी चाहता हूँ। मेरा एक परिचित व्यक्ति जो एक अच्छे खुशीका जन्म होता है, जिसका आनन्द उनके तन-मन-पदपर आसीन था, उसने खूब रिश्वत ली, कई हेरा-रूहमें उत्साहकी सुरभि भरता हुआ उसकी तृप्तिको पूर्णताके फेरियाँ कीं। बहुत जायदाद बनायी। वह लगभग ५५ वर्षकी आयुमें बीमार पड़ गया। डॉक्टरोंने कहा इसको बन्धनमें बाँधकर अनेक खुशियोंका संगम कर देता है। सारी प्राकृतिक भव्यता, अच्छी पुस्तकें, साहित्यिक कैंसर है। कोई भी बचाव नजर नहीं आता। उसका रिसाले, अखबारोंके अच्छे कालम, लेख, विभिन्न इलाज एक अच्छे अस्पतालमें चल रहा था। मैं उसका रिश्तोंमें राम-भरतकी पादुका (खड़ाऊँ)-सदृश रिश्ते हाल-चाल पूछनेके लिये गया। उसका शरीर गुब्बारेसे निकली हवाकी भाँति था। आँखें बीच धँसी हुई। सिरके आदि तत्त्वोंमें ख़ुशीके सकारात्मक, सौन्दर्यपूर्ण सूर्य तथा समन्दर छिपे हुए हैं, जिनका चिन्तन आविष्कारक बाल झड़ चुके थे। गोरा-चिट्टा रंग काला हो चुका शक्तिसे करनेकी आवश्यकता होती है। था। लगता था कोई भूत हो। मैंने उसको कहा, 'भाई साहब, क्या हाल है?' वह मेरी ओर देखकर आँसू संवेदनशीलता, अहसास तथा महसूस करनेकी भीतरी शक्तियाँ जब मानवमें उजागर होकर उसको अच्छे-बुरेकी बहाने लगा; क्योंकि मैं उसकी जीवनशैलीसे परिचित था। उसकी अच्छी-बुरी क्रियाओंसे वाकिफ था, तो वो पहचान, सीखने और माननेकी भावनाके संग्रहको प्यारकी मीठी चासनीमें डालकर नई मीठी-मीठी खुशबूदार कृति मुझसे रुआँसी तथा टूटती आवाजमें कहने लगा, जो कुछ भी जीवनमें किया है, सब कुछ दिमागमें घूम रहा तैयार करती हैं, तो खुशीका जन्म होता है। किसी भी मानवको कोई हजार वर्ष थोड़े ही जीना है। दिल करता है कि वापस जाकर, उन सबसे मुआफी माँगूँ, जिनका मैंने दिल दुखाया है। जिनसे ज्यादितयाँ की है, ज्यादा-से-ज्यादा मानवकी आयु एक सौ वर्ष मान लो। सौ वर्ष तो चुटकीके साथ व्यतीत हो जाते हैं। अब हैं, जिनसे बेईमानियाँ की हैं आदि। आप देख लें आपकी आयु कितनी है? भला ऐसा मैंने कहा, भाई साहब, आप अब वापस नहीं जा महसूस नहीं हो रहा कि आप जिस आयुमें हैं, ऐसे नहीं सकते। आप मुझे बताइये कि जीवन क्या है? हमें कैसे लगता कि यह आयु तो चुटकीकी भाँति बीत चुकी है। जीना चाहिये ? कोई संदेश दें ? ताकि हम भी कोई पाप आप सोचेंगे कि कई अधूरे काम रह गये हैं, जो नहीं न कर सकें। पापसे बच सकें। किये, तथा बुढापेने जीवनकी पुस्तकके आखिरी पन्नेपर उसने मुझे इशारेसे समझाया। मैं समझ गया तथा हस्ताक्षर कर दिये हैं। आप अब कुछ नहीं कर सकते। जेबसे एक कागज और पेन निकालकर दे दिया। दोस्तो, जवानी तथा प्रौढ़ताकी आयु एक बहुत ही कागजके ऊपर काँपते हाथोंसे उसने बड़े-बड़े अक्षरोंमें खूबसूरत, कर्मठ और जानदार आयु होती है। यह आयु लिख दिया 'लव' (प्यार)। ही उपलब्धियोंकी आयु होती है। परिश्रम, संघर्ष, दोस्तो, खुशीकी मंजिल प्यार है। सचका प्यार, सहृदयताका प्यार, रिश्ते-नातोंका प्यार, दोस्तों-मित्रों-संकल्प, प्रण, निष्ठा, प्रतिष्ठा आदिकी आयु होती है। जो लोग इस आयुमें अपनी क्षणिक उपलब्धियों, स्नेहियोंका प्यार, बेगानोंका प्यार, अपने-परका प्यार, लक्ष्योंको प्राप्त कर लेते हैं, उनके इर्द-गिर्द, आस-पास, आस-पासका प्यार और प्रत्येक तत्त्वमें खिली धूप-जैसा प्यार, ऊषाकाल-जैसा प्यार। दोस्तो, खुशीको हृदयमें ख़ुशियोंके ढेर लगे रहते हैं। खुशी ही एक ऐसी चीज है, जो मनको ताजगी, ढूँढ़नेकी कोशिश करते रहो, खुशी आपके आस-पास ही तो है। स्फूर्ति, भव्यता, प्यार-स्नेह-मोह, रिश्तोंका आनन्द,

भूतधात्री युगाद्या शक्तिपीठ—क्षीरग्राम संख्या ७] भूतधात्री युगाद्या शक्तिपीठ—क्षीरग्राम तीर्थ-दर्शन— (श्रीप्रदीपकुमारजी) भृतधात्री युगाद्या शक्तिपीठ पश्चिम बंगालके वर्द्धमान इसका लौहद्वार हमेशा बन्द रहता है। देवी माँकी मूर्ति वर्षमें केवल दो बार ही जलसे (वर्दवान) जिलेके क्षीरग्राममें स्थित है। इस क्षेत्रको वीरभूमि कहा जाता है और इस क्षेत्रमें पाँच शक्तिपीठ बाहर दर्शन एवं पूजन-अर्चनहेतु सीमित समयके लिये ही स्थित हैं। क्षीरग्राममें देवीके दाहिने पैरके अँगुठेका निपात निकाली जाती है। यह वर्षके एक दिवस वैशाख माहकी हुआ था। यहाँ भूतधात्री महामायाके साथ देवी भद्रकालीकी संक्रान्तिको प्रातः जलसे बाहर निकालकर मुख्य मन्दिरमें मूर्ति मिलकर एक हो गयी है। अत: देवीका नाम तभीसे प्रतिष्ठित की जाती है और इसके दर्शन प्रात: चार बजेसे युगाद्या पड़ गया है। देवीके मुख्य मन्दिरके निकट ही भैरव रात्रि आठ बजेतक ही होते हैं। इसी मध्य उनकी पूजा-अर्चना की जाती है, परंतु जल उसपर निरन्तर डाला जाता

हुआ था। यहा भूतियात्रा महामायाक साथ देवा मह्रकालाका मूर्ति मिलकर एक हो गयी है। अतः देवीका नाम तभीसे युगाद्या पड़ गया है। देवीके मुख्य मन्दिरके निकट ही भैरव क्षीरकण्ठका मन्दिर एक टीलेपर स्थित है।

मन्दिर चारों ओर प्राचीरसे घिरा है तथा प्रांगण अति विशाल क्षेत्रमें फैला है। इसके एक ओर पुरातनकालका द्वार है, जो अपने–आपमें आश्चर्यजनक है; क्योंकि इसमें पास–पास दो छोटे–छोटे गुम्बद जुड़े हैं, जिनके नीचे द्वार है। प्रांगणके मध्यमें दो गुम्बद एवं एक बरामदायुक्त मन्दिर स्थित है। मन्दिरमें एक छोटा बरामदा है, जिसमें श्रद्धालु बैठकर भजन आदि गायन करते हैं। इसके पश्चात एक

पास-पास दो छोटे-छोटे गुम्बद जुड़े हैं, जिनके नीचे द्वार है। प्रांगणके मध्यमें दो गुम्बद एवं एक बरामदायुक्त मन्दिर स्थित है। मन्दिरमें एक छोटा बरामदा है, जिसमें श्रद्धालु बैठकर भजन आदि गायन करते हैं। इसके पश्चात् एक बड़ा गुम्बद है, जिसके नीचे एक प्रकोष्ठ है, जिसमें एक ओर एक पलंग पड़ा है, जिसपर पुष्प आदि चढ़े रहते हैं—ऐसी मान्यता है कि देवी माँ प्रतिदिन यहाँ रात्रिमें शयन करती हैं। बड़े गुम्बदके पीछे दो तलोंवाला एक छोटा गुम्बद है, जिसके नीचे गर्भगृह है, जहाँ कोई मूर्ति स्थित नहीं है, बल्कि एक छोटी वेदी है, जहाँ प्रात:-सायं आरती-पूजा सम्पन्न की जाती है। मन्दिरके निकट ही एक टीलेपर भैरव क्षीरकण्ठका पृथक् सुन्दर मन्दिर स्थित है। माना जाता है कि इस मन्दिरका निर्माण महाराजा वर्द्धमानद्वारा कराया गया है। मुख्य मन्दिरसे आधे किलोमीटरकी दूरीपर एक भव्य सरोवर स्थित है और इसीके एक किनारेपर सफेद रंगका भव्य मन्दिर निर्मित है। मन्दिर सुन्दर द्वारयुक्त दो गुम्बदोंवाला

है। प्रथम गुम्बद बड़ा एवं गोलाकार है, जबकि द्वितीय गुम्बद

पाँच तलोंवाला चौकोर और अत्यधिक ऊँचा है। इसीके नीचे

माँका गर्भगृह है, जिसमें सर्वदा लगभग ६ फीट जल भरा

रहता है और इसी जलमें माँ युगाद्याकी मूर्ति पूर्णतया डूबी

रहती है। ये जल मन्दिरके चारों ओर दीवारसे रक्षित है तथा

चौथे ज्येष्ठको देवी माँ जलसे बाहर मात्र सायं ६ बजेसे रात्रि १२ बजेतक ही निकाली जाती हैं और इसके पश्चात् पुन: सरोवर मन्दिरके गर्भगृहमें जलमग्न हो जाती हैं। वर्षके दोनों दिवसोंमें दर्शनहेतु सूचना स्थानीय समाचार-पत्रोंमें प्रकाशित की जाती है और उन दिवसोंपर यहाँ भव्य मेला लगता है। क्षीरसरोवरमें मन्दिरके निकट ही एक और आधुनिक मन्दिर निर्मित है।

पहुँचनेका मार्ग एवं ठहरनेका स्थान—यहाँ पहुँचनेके लिये वायुमार्गहेतु कोलकाता एकमात्र हवाई अड्डा है, जहाँसे बस, टैक्सी आदिसे सरलतासे वर्द्धमान पहुँचा जा सकता है। वर्द्धमान जंक्शन हावड़ा-दिल्ली रेलमार्गके मध्यमें स्थित है। अनेक मुख्य नगरोंसे रेलगाड़ियाँ वर्द्धमान

होकर ही जाती हैं। वर्द्धमानसे बस या टैक्सीद्वारा श्रद्धालु ४८ कि॰मी॰ की दूरी तय करके कैचर तिराहा पहुँचते हैं,

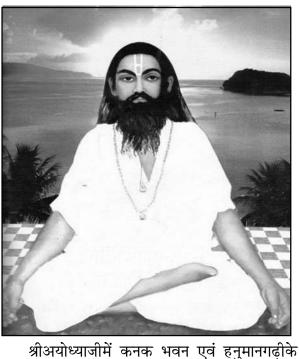
रहता है; क्योंकि ऐसी मान्यता है कि जल न डालनेपर

माँकी मूर्ति क्षतिग्रस्त हो सकती है। शायद इसी कारणसे

यह मूर्ति वर्षभर जलके अन्दर ही स्थित रहती है। वर्षके

जहाँसे पैदल या रिक्शा आदिसे ५ कि॰मी॰ चलकर क्षीरग्राम मन्दिरतक पहुँच सकते हैं। वर्द्धमान-कटवा नेरोगेज रेलोंसे यात्री कटवा पहुँचते हैं, जहाँसे क्षीरग्राम १७ कि॰मी॰ दूर बस या अन्य साधनोंसे पहुँच सकते हैं। क्षीरग्राममें ठहरनेकी उचित व्यवस्था नहीं है, अत: यात्रियोंको कैचर कटवा या वर्द्धमानमें ही ठहरना उचित होगा। खान-पान केवल मेलेके दिनोंमें ही मिलता है। अन्य दिवसोंपर केवल चाय-नाश्ता ही प्राप्त हो पाता है।

भक्त पलटूदास उपाय न देखकर श्रीरामप्रसादजीने दो साधुओंको पलटू



भक्त-गाथा

बीचमें एक आश्रम है, जिसे बडी जगह अथवा दशरथमहलके नामसे जाना जाता है। काफी पहले वहाँ एक सन्त रहा करते थे, जिनका नाम था—श्रीरामप्रसादजी। उस समय अयोध्याजीमें इतनी भीड़-भाड़ नहीं होती थी।

ज्यादा लोग नहीं आते थे। श्रीरामप्रसादजी ही उस समय बड़ी जगहके कर्ता-धर्ता थे। वहाँ बड़ी जगहमें मन्दिर है, जिसमें पत्नियोंसहित चारों भाई (श्रीराम, श्रीलक्ष्मण,

श्रीभरत एवं श्रीशत्रुघ्नजी) हनुमानुजीकी सेवा होती है।

चुँकि सब-के-सब फक्कड सन्त थे, तो नित्य मन्दिरमें

जो भी थोडा-बहुत चढावा आता था, उसीसे मन्दिर एवं आश्रमका खर्च चला करता था।

प्रतिदिन मन्दिरमें आनेवाला सारा चढावा एक बनियेको जिसका नाम पलटू बनिया था, भिजवाया जाता

था। उसी धनसे थोड़ा-बहुत जो भी राशन आता था,

उसीका भोग-प्रसाद बनकर भगवान्को भोग लगता था और जो भी सन्त आश्रममें रहते थे, वे भी प्रसाद पाते थे। एक बार प्रभुकी ऐसी लीला हुई कि मन्दिरमें कुछ

बनियाके पास भेजकर कहलवाया कि 'भइया! आज तो कुछ चढ़ावा आया नहीं है, अत: थोड़ा-सा राशन उधार दे दो। कम-से-कम भगवानुको भोग तो लग ही जाय।' पलटू बनियाने जब यह सुना तो उसने यह कहकर

मना कर दिया कि मेरा और महन्तजीका लेना-देना तो नकदका है। मैं उधारमें कुछ नहीं दे पाऊँगा। श्रीरामप्रसादजीको यह पता चला तो 'जैसी भगवान्की इच्छा' कहकर उन्होंने भगवानुको उस दिन जलका ही भोग लगा दिया। सारे साधु भी जल पीकर रह गये। प्रभुकी ऐसी परीक्षा थी कि रात्रिमें भी जलका ही भोग

लगा और सारे साधु भी जल पीकर भूखे ही सोये। वहाँ मन्दिरमें नियम था कि शयन कराते समय भगवान्को एक बडा सुन्दर पीताम्बर ओढाया जाता था तथा शयन आरतीके बाद श्रीरामप्रसादजी नित्य करीब एक घंटा बैठकर भगवान्को भजन सुनाते थे। पूरे दिनके भूखे

रामप्रसादजी बैठे भजन गाते रहे और नियम पूरा करके

बनिया घबरा गया कि इतनी रातको कौन आ गया। जब

सोने चले गये। धीरे-धीरे करके रात बीतने लगी। करीब आधी रातको पलट्र बनियाके घरका दरवाजा किसीने खटखटाया।

आवाज सुनी तो पता चला कुछ बच्चे दरवाजेपर शोर मचा रहे हैं- 'अरे पलट्रः पलटू सेठः अरे! दरवाजा खोल।' उसने हड़बड़ाकर खीझते हुए दरवाजा खोला। सोचा कि जरूर ये बच्चे शरारत कर रहे होंगे...। अभी

इनको अच्छेसे डाँट लगाऊँगा। जब उसने दरवाजा खोला तो देखता है कि चार लडके जिनकी अवस्था बारह वर्षसे भी कमकी होगी, एक पीताम्बर ओढकर खडे हैं।

वे चारों लडके एक ही पीताम्बर ओढे थे। उनकी छवि इतनी मोहक ऐसी लुभावनी थी कि ना चाहते हुए

भी पलटूका सारा क्रोध प्रेममें परिवर्तित हो गया और वह चढ़ावा आया ही नहीं, अब इन साधुओंके पास कुछ आश्चर्यसे पूछने लगा—'बच्चो! तुम हो कौन और इतनी Hinduism Discord Server https://dsc.og/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Sha

संख्या ७] भक्त पलटूदास ************************ बिना कुछ कहे बच्चे घरमें घुस आये और बोले-पैसे भिजवानेकी क्या आवश्यकता थी ? मैं कान पकडता हमें रामप्रसाद बाबाने भेजा है। ये जो पीताम्बर हम ओढे हूँ, आजके बाद कभी भी राशनके लिये मना नहीं करूँगा हैं, इसका कोना खोलो, इसमें सोलह सौ रुपये हैं, और ये रहा आपका पीताम्बर। वे बच्चे मेरे यहाँ ही छोड निकालो और गिनो। ये वह समय था, जब आना और गये थे। बडे प्यारे बच्चे थे। इतनी रातको बेचारे पैसे लेकर पैसा चलता था। सोलह सौ रुपये उस समय बहुत बड़ी आ भी गये। आप बुरा न मानें तो मैं एक बार उन रकम हुआ करती थी। जल्दी-जल्दी पलटूने उस बालकोंको फिरसे देखना चाहता हूँ।' पीताम्बरका कोना खोला तो उसमें सचमुच चाँदीके जब रामप्रसादजीने वह पीताम्बर देखा तो पता सोलह सौ सिक्के निकले। प्रश्नभरी दुष्टिसे पलटू बनिया चला ये तो हमारे मन्दिरका ही है, जो गायब हो गया उन बच्चोंको देखने लगा। तब बच्चोंने कहा—'इन था। अब उन्होंने पूछा कि ये तुम्हारे पास कैसे आया? पैसोंका राशन कल सुबह आश्रम भिजवा देना।' तब उस बनियाने रातवाली पूरी घटना सुनायी। अब तो अब पलटू बनियाको थोडी शर्म आयी—'हाय! रामप्रसादजी भागे जल्दीसे और सीधा मन्दिरमें जाकर आज मैंने राशन नहीं दिया। लगता है महन्तजी नाराज भगवानुके पैरोंमें पड़कर रोने लगे कि 'हे भक्तवत्सल! हो गये हैं, इसीलिये रातमें ही इतने सारे पैसे भिजवा मेरे कारण आपको आधी रातमें इतना कष्ट उठाना पड़ा दिये।' पश्चात्ताप, संकोच और प्रेमके साथ उसने हाथ और कष्ट उठाया सो उठाया। मैंने जीवनभर आपकी जोड़कर कहा—'बच्चो! अपनी पूरी दुकान भी उठाकर सेवा की, मुझे तो दर्शन न हुआ और इस बनियेको आधी में महन्तजीको दे दूँगा तो भी ये पैसे ज्यादा ही बैठेंगे। रातमें दर्शन देने पहुँच गये।' जब पलटू बनियाको पूरी बात पता चली तो उसका इतने मूल्यका सामान देते-देते तो मुझे पता नहीं कितना समय लग जायगा।' बच्चोंने कहा—'ठीक है! आप एक हृदय भी धकुसे होकर रह गया कि जिन्हें मैं साधारण साथ सामान मत दीजिये" थोडा-थोडा करके अबसे बालक समझ बैठा, वे तो त्रिभुवनके नाथ थे। अरे! मैं तो चरण भी न छू पाया। अब तो वे दोनों ही लोग नित्य ही सुबह-सुबह आश्रम भिजवा दिया करिये। आजके बाद कभी भी राशनके लिये मना मत कीजियेगा। बैठकर रोयें। इसके बाद कभी भी आश्रममें राशनकी पलटू बनिया तो मारे शर्मके जमीनमें गड़ा जाय। कमी नहीं हुई। आजतक वहाँ सन्त-सेवा होती आ रही वह फिर हाथ जोड़कर बोला—'जैसी महन्तजीकी है। इस घटनाके बाद ही पलटू बनियाको वैराग्य हो गया आज्ञा।' इतना कह-सुनकर वे बच्चे चले गये। लेकिन और वे पलटू बनिया ही बादमें श्रीपलटूदासजीके नामसे जाते-जाते पलटू बनियाका मन भी ले गये। इधर सबेरे-विख्यात हुए। सबेरे मंगला आरतीके लिये जब पुजारीजीने मन्दिरके पट श्रीरामप्रसादजीकी व्याकुलता उस दिन हर क्षणके खोले तो देखा भगवानुका पीताम्बर गायब है। उन्होंने साथ बढती ही जाय और रातमें शयनके समय जब वे ये बात रामप्रसादजीको बतायी और सबको लगा कि भजन गाने बैठे तो मूर्च्छित होकर गिर गये। संसारके कोई रातमें पीताम्बर चुराकर ले गया। जब थोड़ा दिन लिये तो वे मूर्च्छित थे, किंतु मूर्च्छावस्थामें ही उन्हें पितनयोंसिहत चारों भाइयोंका दर्शन हुआ और उसी चढा तो गाड़ीमें ढेर सारा सामान लदवाकर कृतज्ञताके दर्शनमें श्रीजानकीजीने उनके आँसू पोंछे तथा अपनी साथ हाथ जोड़े हुए पलटू बनिया आया और सीधा रामप्रसादजीके चरणोंमें गिरकर क्षमा माँगने लगा। उँगलीसे इनके माथेपर बिन्दी लगायी, जिसे फिर सदैव रामप्रसादजीको तो कुछ पता ही नहीं था। वे पूछे— इन्होंने अपने मस्तकपर धारण करके रखा। उसीके 'क्या हुआ… ? अरे! किस बातकी माफी माँग रहा है ?' बादसे इनके आश्रममें बिन्दीवाले तिलकका प्रचलन पर पलटू बनिया उठे ही ना और कहे—'महाराज, रातमें हुआ। [साभार—सोशल मीडिया]

संस्कृति, धर्म एवं आस्थाकी पर्याय—गंगा (प्रो० श्रीअभिराज राजेन्द्रजी मिश्र)

हमारे तत्त्वदर्शी आचार्योंने चार पुरुषार्थींकी केचित्मरन्यनुसरन्ति च केचिदन्ये

पश्यन्ति पुण्यपुरुषाः कति च स्पृशन्ति। प्रतिष्ठापना करते हुए भी काम एवं अर्थको धर्मद्वारा

मातर्मुरारिचरणाम्बुजमाध्वि गंगे

भाग्याधिकाः कतिपये भवतीं पिबन्ति॥

(पण्डितराज जगन्नाथ)

धर्म और संस्कृति मानवतापर आरोपित प्रक्रिया नहीं

है। वह एक सहज प्रक्रिया है। व्यवस्थाको बनाये रखनेके

लिये ही व्यवस्थासे उनका जन्म होता है। यदि मनु (दशकं धर्मलक्षणम्), पतंजिल तथा अन्यान्य धर्माचार्यों

(वसिष्ठ, आपस्तम्ब, गौतम आदि)-के धर्मलक्षणोंको

उपेक्षित भी कर दिया जाय, तो भी उसकी सहज अपेक्षा तथा अवश्यकरणीयताका तिरस्कार नहीं किया जा

सकता; क्योंकि धर्म एवं संस्कृति मानव-जीवनमें समरस हैं, एकरूप हैं। प्रकृति स्वयं धर्म एवं संस्कृतिका निर्माण करती है। हमें सुगन्ध अच्छी लगती है दुर्गन्ध नहीं, शर्बत मीठा लगता है मिर्चा नहीं, पर्वतोंकी घाटियाँ दर्शनीय

प्रतीत होती हैं, मरघटका दृश्य नहीं। जैसे प्रकृतिके व्यापार अनुकूल एवं प्रतिकूल होते हैं,

ठीक उसी प्रकार मानवीय व्यवहारोंके भी। जिन अनुकूल मानवीय व्यवहारोंसे समाज व्यवस्थित होता है, अभ्युदय

प्राप्त करता है—उसे धर्म कहते हैं—धर्मो धारयति प्रजाः (मनुस्मृति)। समाज सत् प्रवृत्तियोंसे धारण किया जाता है, जिनकी संख्या आचार्य मनुने दस मानी है—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचिमिन्द्रियनिग्रहः। धीर्विद्यासत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥ मनुद्वारा प्रतिपादित धर्मका उपर्युक्त स्वरूप वस्तुत:

लौकिक अभ्युदयको दृष्टिमें रखकर प्रतिपादित किया गया है; परंतु धर्मका लक्ष्य केवल लोकाभ्युदय ही नहीं

है बल्कि पारलौकिक श्रेय अथवा नि:श्रेयसकी सिद्धि भी उसका प्राप्तव्य है। इसीलिये महर्षि पतंजलिने कहा— यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स

अनुमोदित होनेकी शर्त रखी है; क्योंकि धर्म ही अर्थ एवं कामको सन्तुलित रख सकता है। अन्यथा अगम्य-

गमन भी कामतृप्तिका साधन बन जाता। चौर्यवृत्ति अथवा छल-छदा-अत्याचारसे भी धनोपार्जन करना न्याय्य बन जाता। गीतामें भगवान् कृष्णने इसी

अभिप्रायको स्पष्ट करते हुए कहा है— धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ! इसी धर्मका साध्य है मुक्ति अथवा मोक्ष! न्यायशास्त्र

इसे अपवर्ग कहता है, तो सांख्य कैवल्य। वेदान्त इसे मुक्ति अथवा मोक्ष कहता है, तो सौगतदर्शन परिनिर्वाण। हनुमन्नाटकके रचयिताने नाटककी नान्दीमें इस मतभेदका

अत्यन्त रोचक वर्णन किया है।* शिवमहिम्नस्तोत्रके कवि पुष्पदन्तने उस भेददृष्टिमें भी अभेद स्थापित करते हुए कहा है-नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव।

धर्मका साधन-पक्ष कुछ कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। नाना प्रकारके व्रत, उपवास, पुरश्चरण, अनुष्ठान, तीर्थाटन, तन्त्र-मन्त्र तथा लोकाचार धर्माचरणकी पूर्तिमें सहायक बनते हैं। इसी सन्दर्भमें हम यह निरूपित करनेका प्रयास

करेंगे कि धर्मके साध्य तथा साधनपक्षोंकी स्थापनामें

देवनदी गंगाका क्या योगदान है ? जैसे चैतन्य आत्मतत्त्वके

अभावमें शरीर व्यर्थ है, उसी प्रकार मुक्तिके अभावमें सारा कर्मकाण्ड व्यर्थ है। मुक्ति तथा कर्मकाण्ड एक ही सिक्केके दो पहलू हैं। शरीरकी ही तरह कर्मकाण्ड स्थूल है, सर्वजनसंवेद्य है; परंतु आत्माकी तरह मुक्ति

अत्यन्त सूक्ष्मतत्त्व है, सर्वजनसंवेद्य नहीं है। भारतीय धर्म एवं संस्कृतिका स्वरूप बताता है कि गंगा धर्मके साध्य एवं साधन दोनों पक्षोंकी अन्वितिमें सहायक रही है। एक ओर जहाँ आप्त-प्रमाणसे हम

धर्म: । * यं शैवा समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनो बौद्धा बुद्ध इति प्रमाणपटवः कर्तेति नैयायिकाः। अर्हन्नित्यथ जैनशासनरता: कर्मेति मीमांसका: सोऽयं वो विदधातु वाञ्छितफलं त्रैलोक्यनाथो हरि:॥

संख्या ७] संस्कृ	७] संस्कृति, धर्म एवं आस्थाकी पर्याय—गंगा ३३			
<u></u>	*********			
'गंगे! तव दर्शनान्मुक्तिः' का उद्घोष सु	-	पतिव्रता नारीमें गंगाका निवास शिवपुराणसे		
नाना प्रकारके व्रतानुष्ठानोंमें गंगाका अविचि	छन्न योगदान	प्रमाणित होता है—		
भी देखते हैं। मुक्तिमें गंगाका सहकार निरु	रूपित करनेसे	यथा गंगावगाहेन शरीरं पावनं भवेत्।		
पूर्व गंगाका कर्मकाण्डीय स्वरूप देखना	उचित होगा।	तथा पतिव्रतां दृष्ट्वा सकलं पावनं भवेत्॥		
धर्मका कर्मकाण्डीय स्वरूप देश, काल त	ाथा व्यक्तिकी	पितरोंकी सेवामें गंगास्नानोचित पुण्य विद्यमान है,		
भिन्नताओंके कारण अत्यन्त जटिल बन ग	गया है। एक	ऐसा पद्मपुराण (भूमिखण्ड अ० ६२ श्लोक ५८ से ७४		
ही तथ्यको विभिन्न स्मृतिकार पृथक् व्याख	यात करते हैं।	तक)-में कहा गया है—		
फिर भी गंगा-सम्बन्धी कर्मकाण्डीय व्यवस	श्थाओंको हम	पितृणां सेवनात् गंगास्नानजन्यफलं भवेत्।		
कुछ शीर्षकोंमें निरूपित कर सकते हैं-		इसौ प्रकार शिवनाम शिवविभूति³, अच्युतकथा-		
गंगाकी व्यापकता —जैसे पुष्पकी	सुरभि समूचे	प्रसंग ^३ , ब्रह्मकमण्डलु ^४ , शिवजटाजूट ^५ , विष्णुचरण ^६ ,		
वातावरणको महका देती है, उसी प्रकार	पवित्र गंगा	नर्मदातटवर्ती नन्दिकेश्वरतीर्थं, नर्मदा, कावेरी, गोमती		
पावनताकी सर्जना करती है। इसके कुर	छ महत्त्वपूर्ण	तथा आविन्ध्या नामक देश-विदेशमें गंगाकी व्यापकताके		
प्रमाण पुराणोंमें उपलब्ध होते हैं।		बहुशः प्रमाण पुराणोंमें उपलब्ध होते हैं। नर्मदाको		
ब्रह्मवैवर्त-पुराण (प्रकृति-खण्ड अ०	१८) शंखमें	अर्धगंगा, कावेरीको दक्षिणगंगा तथा गोमतीको पूर्वगंगा		
गंगाका निवास मानता है। पद्मपुराण (उन	त्तरखण्ड अ०	अथवा आदिगंगा कहा गया है।		
१२९)-की भी मान्यता है कि शंखमें उ	स्थापित जल	नारदपुराण (२। ३८। १७—१९)-में उल्लेख		
गंगाजल-जैसा पवित्र होता है।		मिलता है कि प्रत्येक मासके शुक्लपक्षमें षष्ठीसे		
देवीभागवत (११। ६। ३६-३७)	-में रुद्राक्षमें	अमावस्यातक गंगा पृथ्वीमें रहती हैं, शुक्लप्रतिपदासे		
गंगाका निवास माना गया है—		दशमीतक पातालमें तथा शुक्ल एकादशीसे कृष्णपक्षकी		
रुद्राक्षं मस्तके धृत्वा शिरः स्नानं कर्रा	ति यः॥	पंचमीतक स्वर्गलोकमें सन्निहित रहती हैं।		
गंगास्नानफलं तस्य जायते नात्र स	गं शय: ।	इन उदाहरणोंका रहस्य सुलझाना कुछ कठिन		
नारदपुराण (९।१२५)-में तुलसीव	दलमें गंगाकी	अवश्य प्रतीत होता है; परंतु इनसे एक तथ्य अवश्य		
स्थितिका प्रमाण मिलता है।		स्पष्ट हो जाता है कि गंगा समस्त पार्थिव वस्तुओं,		
तुलसीदलसम्मिश्रमपि सर्षपमाः	त्रकम्।	लोकों, तीर्थों, जीवों तथा अनुभूतियोंमें व्याप्त है।		
गंगाजलं पुनात्येव कुलानामेकविंइ	शतिम् ॥	ऐसी सर्वव्यापकता शायद ही किसी औरको प्राप्त		
गर्गसंहितामें वृन्दावनखण्डमें भी इस	भी मान्यताका	हुई हो जगन्नियन्ता ईश्वरको छोड़कर। इससे गंगाके		
समर्थन मिलता है।		दैवी रूपकी महिमा और पार्थिवरूपकी गरिमा स्पष्ट		
पुष्कराद्यानि तीर्थानि गंगाद्याः सरित	स्तथा।	हो जाती है।		
वासुदेवादयो देवा वसन्ति तुलस	प्रीदले ॥	गंगास्नानका महत्त्व— गंगा-सम्बन्धी कर्मकाण्ड		
(गर्ग० वृन्दाव	वन० १६। १३)	(धर्माचरण अथवा साधनापक्ष)-का दूसरा सोपान है		
१ शंखे चन्द्रार्कदैवत्यं मध्ये वरुणदैवतम्। पृ त्रैलोक्ये यानि तीर्थानि वासुदेवस्य चाज्ञया । १ २. द्रष्टव्य-शिवपुराण, विश्वेश्वरसंहिता, २३। १ ३. वही, गंगा यमुना त्रिवेणी''', यत्राच्युतद्वारकथ् ४. द्रष्टव्य-शिवपुराण, पार्वतीखण्ड, ११। ५ ५. द्रष्टव्य-महाभारत, वनपर्व, अ० १०९ ६. वाल्मीकिकृत गंगाष्टक। ७. द्रष्टव्य-शिवपुराण, कोटिरुद्रसंहिता, ७। ३४	गंखे तिष्ठन्ति विप्रेन् १० तथा १४ थाप्रसंगः।	,		

िभाग ९६ ***************** गंगास्नान। गंगाका स्मरण, अनुसरण, दर्शन, स्पर्श तथा जहाँ धर्मके साधना-पक्षके पूरक हैं, वहीं संस्कृतिके पान उत्तरोत्तर पुण्योत्कर्षका सूचक है। साकल्येन ये निर्माणमें भी सहायक हैं। व्रत, उपवास तथा मन्त्र-तन्त्र आदि शरीर-शुद्धिके हेतु हैं। इनका लक्ष्य होता है समस्त क्रियाएँ गंगास्नानमें ही अन्तर्भूत हैं। गंगास्नानके नवग्रह अथवा किसी अन्य देवताको लक्ष्य बनाकर दो पक्ष हैं, एक तो शारीरिक मलका अपनोदन, सद्य: स्फूर्ति, औषधीय गंगाजलके पानसे रोगोंका प्रशमन; परंत् आराधना करना और आराधनाका लक्ष्य होता है इससे कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है इस स्नानका दुसरा पक्ष अरिष्टका विनाश, अभीष्टकी प्राप्ति अथवा किसी अर्थात् आत्मशुद्धि । गंगास्नानसे अन्तः करण प्रकाशपुंजसे बाधित लोकैषणाकी सम्पूर्ति। दीप्त हो उठता है तथा वासनाओंके तन्तु क्षीण हो जाते उत्तर भागके ग्राम्य परिवेशमें आज भी वन्ध्या हैं। आचार्य शंकरकी दृष्टिमें यही मानसस्नान है, यही स्त्रियाँ गंगामें कटा हुआ कृष्माण्ड (कृम्हुडा) पुत्रप्राप्तिकी साधनाकी पराकाष्ठा है। कामनासे अर्पित करती हैं अथवा 'पियरी' (पीली वस्तुत: सत्प्रवृत्तियोंका उदय ही गंगास्नानका लक्ष्य साड़ी) अर्पित करती हैं। वैधव्य प्राप्त होनेपर गंगातटपर है। यदि गंगास्नानसे पूर्व अथवा पश्चात् मनमें मलिनता क्षौरकर्म कराने तथा वस्त्रत्यागकी परम्परा भी है। रही अथवा पापका उदय हुआ, तो गंगास्नानकी कोई बच्चोंका मुण्डन गंगातटपर कराना भी एक प्रथा है। सार्थकता नहीं। वस्तृत: भावशृद्धि ही आत्मिक अभ्युदयका गंगातटपर पिण्डदान, याग-यज्ञ, प्रवचन, वैर-समाप्ति, हेतु है। * यदि ऐसा न होता तो गंगाजलमें रहनेवाले शपथ-ग्रहण आदि पारम्परिक कृत्य आज भी प्रचलित हैं। इन कार्योंसे गंगाका लोकमानसमें 'साक्षित्व' उभरता मत्स्यों अथवा देवालयवासी पिक्षयोंकी भी मुक्ति हो ही जाती। शिवपुराणमें ठीक ही कहा गया है— है। वह प्रत्येक सत्प्रवृत्तिकी साक्षी हैं एक जीवन्त देवताके रूपमें, एक ममतामयी मॉॅंके रूपमें। अपने गंगादितीर्थेषु वसन्ति मत्स्या देवालये पक्षिगणाश्च नित्यम्। आकर्षक केशकुन्तल कटाना, सौभाग्यसूचक चुडियाँ भावोज्झितास्ते न फलं लभन्ते तीर्थावगाहाच्य तथैव दानात्॥ गंगास्नानकी फलश्रुतिके भी अनेक प्रमाण हमें प्राचीन फोड़ना, सुन्दर वेषभूषा त्यागना, गंगाको अपने फूटे वाङ्मयमें मिलते हैं। नारदपुराणमें छ: मासतक निरन्तर भाग्यका साक्षी माननेका ही प्रतीक है। गंगास्नान करनेसे राक्षसत्व छूट जानेकी बात कही गयी इन सांस्कृतिक कृत्योंके साथ-ही-साथ अनेक व्रतानुष्ठान भी गंगासे सम्बद्ध हैं। **पद्मपुराण** (पातालखण्ड है। नित्य गंगास्नानसे मनुष्य सूर्यके समान पवित्र होता है। अ० ८२)-में गंगासप्तमी व्रतका विस्तृत वर्णन मिलता नित्य अरुणोदय गंगास्नानसे प्राणी ६० हजार वर्षतक हरिमन्दिर (स्वर्ग)-में वास करता है, ऐसा देवीभागवत है। वैशाख शुक्ल सप्तमीको ही महर्षि जहुने गंगाको पी (९। ३०। ५९)-में प्राप्त होता है। १३ मास गंगास्नान लिया था और फिर भागीरथकी प्रार्थनापर दाहिने करनेसे पुत्रप्राप्तिका प्रमाण शिवपुराण शतरुद्रीय-संहिता कर्णछिद्रसे उन्हें बाहर निकाल दिया था। इस दिन (१३। ३६)-में मिलता है। इसी प्रकार **रुद्रयामल** तथा हरिद्वार, कुशावर्त, बिल्वक, नीलपर्वत तथा कनखलमें गंगास्नान करनेसे वैकुण्ठ-प्राप्ति होती है। कल्किपुराणके उद्धरणोंमें गंगास्नानसे धन-धान्य एवं लक्ष्मी-प्राप्ति, बल एवं आयुकी वृद्धि तथा ब्रह्महत्यादि हरिवंशपुराणमें भी माघमासके शुक्लपक्षमें गंगाव्रतकी विधि और महिमाका विस्तृत विवेचन है। पापोंका शमन बताया गया है। अथर्ववेद (४।८।६)-में दिव्या पयस्वतीके रूपमें पतिकी अनुकूलता तथा सपत्नीभयकी समाप्ति ही इस सम्भवतः गंगाजलको ही भेषजीय संजीवनशक्तिको व्रतका प्रमुख लक्ष्य है। संकेतित किया गया है। अनेक वैज्ञानिक प्रयोगोंसे भी वराहपुराणमें दशहरा व्रतका विस्तृत वर्णन है। गंगाजलकी पथ्यता सिद्ध हो चुकी है। ज्येष्ठमासकी शुक्लपक्षीया दशमी, मंगलवार, हस्त नक्षत्रमें व्रतानुष्ठान एवं गंगा—गंगा-सम्बन्धी व्रतानुष्ठान देवनदी गंगा स्वर्गसे पृथ्वीपर उतरी थीं। अपने अवतरणमात्रसे Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE ŴITH LOVE BY Avinash/Sha

संख्या ७] संस्कृति, धर्म एवं आ	स्थाकी पर्याय—गंगा ३५
**************************************	**************************************
गंगाने दस प्रकारके पापोंको नष्ट कर दिया। इसलिये	प्रायः समझ नहीं पाता, अतः इन बातोंको बड़ी
इस पर्वको दशहरा कहते हैं—हरते दश पापानि	सरलतासे पाखण्ड मानकर निश्चिन्त हो जाता है।
तस्माद्दशहरा स्मृता। हेमाद्रि-प्रणीत चतुर्वर्गचिन्तामणि	गंगामें करनेयोग्य (विधेय) कार्य विविध प्रमाणोंके
तथा स्कन्दपुराणके काशीखण्डमें दशहराव्रत-सम्बन्धी	आधारपर मुख्यतः इस प्रकार हैं—१.प्राणत्याग,
अन्यान्य महत्त्वपूर्ण तथ्य भी दिये गये हैं, जिन्हें	२.मन्त्रानुष्ठान, ३.तपश्चरण।
विस्तारभयसे यहाँ वर्णित नहीं किया जा रहा है।	प्रारम्भमें सम्भवत: असाध्य रोगसे पीड़ित अथवा
गंगाद्वारा विनष्ट दस पापोंकी व्याख्या स्कन्दपुराण	वार्धक्यकी यन्त्रणासे जर्जर लोग ही गंगामें मृत्युवरण
में मिलती है। तीन कायिक (अदत्त-उपादान, अवैदिकी	करते होंगे। कालान्तरमें धर्मभीरु जनताके लिये यह प्रथा
हिंसा तथा परदारोपसेवन), चार वाचिक (पारुष्य,	मुक्तिका पर्याय बन गयी। फलतः गंगामें प्राणत्यागकी
अनृत, पैशुन्य तथा असम्बद्ध प्रलाप) तथा तीन मानस	अनिवार्यतासे बचनेके लिये लोग गंगातटपर मुण्डन
पाप (परद्रव्याभिध्यान, अनिष्टचिन्तन, वितथाभिनिवेश)	कराने लगे। लोकपरम्परामें किसीका बाल उतरवा लेना
ही मिलकर दस पाप होते हैं।	मृत्युके ही समान कष्टकर दण्ड है।
गंगा–सम्बन्धी मन्त्र–तन्त्रके अनुष्ठान भी चिरकालसे	विधि कर्मोंके अनन्तर निषेध-कर्म आते हैं। इन
ही लोकप्रचलित रहे हैं। मन्त्रमें प्राय: संकेताक्षरोंका	निषेध-कर्मोंकी वर्जना तथा दुष्परिणतिका सूक्ष्म व्याख्यान
प्रयोग होता है, जो कि उपास्य देवताके स्वरूप एवं	पुराणोंमें मिलता है। मुख्य निषिद्ध कर्म इस प्रकार हैं—
शक्तिसे सम्बद्ध होते हैं। भविष्योत्तर-पुराणमें २२	१. गंगास्नानमें यान-निषेध ^१ ।
अक्षरके गंगामन्त्रका वर्णन है, जिसे दशहरा तिथिपर	२. गंगाजल–विक्रय–निषेध ^२ ।
पाँच हजार संख्यामें जपनेपर दस धर्मफल प्राप्त होते हैं।	३. गंगाको साक्षी मानकर मिथ्याभाषणका निषेध ^३ ।
स्कन्दपुराणमें २० अक्षरके गंगामन्त्रकी व्याख्या की	४. गंगामें वर्ज्य १४ कार्य—
गयी है। अग्निपुराण में भी गंगा-सम्बन्धी एक वशीकरण	गंगाके समीप शौच, गंगाजलमें उच्छिष्ट जलमोचन
मन्त्रका वर्णन है, जिसके एक लाख जप तथा दशांश	(कुल्ला करना), गंगामें बाल झाड़ना या बहाना,
(दस हजार) आहुतिसे मनुष्य इन्द्रादि देवोंको भी	निर्माल्य फेंकना, मैल छुड़ाना, शरीर मलना, हँसी-
वशीभूत कर सकता है। यह मन्त्र देवाधिदेव शंकरद्वारा	मजाक करना, दान लेना, गंगातटपर मैथुन, अन्य
षडाननको उपदिष्ट किया गया है।	तीर्थोंके प्रति अनुराग रखना, अन्य तीर्थकी महिमाका
गंगा-विषयक विधि-निषेध— धर्म-साधना	गायन, कपड़ा धोना अथवा बहाना, गंगाजलको पीटना
(कर्मकाण्ड)-में विधि-निषेधका भी बड़ा महत्त्व है;	तथा गंगाजलमें सन्तरण (जलक्रीड़ा) करना ^४ ।
क्योंकि सारे अनुष्ठानोंकी सफलता-असफलता उनपर	पुण्यार्जनस्त्रोत-गंगातीर्थ— साधनाका पाँचवाँ पक्ष
उसी प्रकार निर्भर है, जैसे औषधिकी सफलता-	है गंगातटवर्ती तीर्थींकी यात्रा। तीर्थ उस भूखण्डको
असफलता पथ्य अथवा परहेजपर। इस विधि-निषेधका	कहते हैं, जो किसी महान् ऋषि-महर्षिकी तप:स्थली
भी वैज्ञानिक पक्ष है, जिसे समझनेके लिये असीम धैर्य,	हो अथवा किसी देवताका निवासस्थान हो। गंगोत्रीसे
आस्था तथा गहन ज्ञानकी आवश्यकता है। आजका	सागरतक प्रवहमान भगवती गंगाके पावन तटपर हजारों
अर्थलोलुप, अनास्थालु समाज साधनाकी उन ग्रन्थियोंको	ऋषियों-मुनियोंने घोर तप किया, जिनकी स्मृतिमें आज
 ऐश्वर्यलोभमोहाद्वा गच्छेद्यानेन यो नरः। निष्फलं तस्य तत् गंगाविक्रयणाद् देवि विष्णोर्विक्रयणं भवेत् । जनार्दनस्तु विक्रं द्रष्टव्य—देवीभागत, ९। ३५-३६ तथा नारदपुराण २। ३९। १ सविस्तर द्रष्टव्य—ब्रह्माण्डपुराण १। ५३५ 	ोतो विक्रीतं भुवनत्रयम्॥(नारद०२।४४।१२५)

िभाग ९६ भी वहाँ तीर्थ स्थापित हैं। इन तीर्थोंमें निवास स्मृतियों, पुराणोंके अतिरिक्त वाल्मीकि, व्यास, शंकर, करनेका माहात्म्य पुराणोंमें वर्णित है। हिमालयकी कालिदास-सरीखे सहस्रों धर्मधुरीण महापुरुषोंने गंगाकी भागीरथी, अलकनन्दा, धौलीगंगा, पिण्डरगंगा, मन्दाकिनी कृपासे मुक्तिलाभ स्वीकार किया है। इन आप्तपुरुषोंके आदि धाराएँ देवप्रयागमें समन्वित होकर विशाल तपस्समाध्यात सत्यका तिरस्कार नहीं किया जा सकता। सागरके रूपमें हृषीकेशकी समतल भूमिपर उतरती अब्दुर्रहीम खानखाना-जैसा श्रद्धालु सन्त भी बड़े विश्वासके हैं। सागरतक गंगामें अनेक सहायक नदियाँ मिलती साथ गंगासे अपनी मुक्ति मॉॅंगता है— हैं, जिनके तटपर असंख्य तीर्थ स्थित हैं। अच्युतचरणतरंगिणि! मदनान्तकमौलिमालतीमाले! गंगाकी मुख्य धाराके तटपर स्थित तीर्थींकी कुल त्विय तनुवितरणसमये हरता देया न मे हरिता॥ संख्या प्राय: ७० है, जिनमें प्रमुख हैं—गोमुख, बदरिकाश्रम, वस्तुत: भगवती गंगाकी कीर्तिकथाका विस्तार हृषीकेश, हरिद्वार, सूकरक्षेत्र, ब्रह्मावर्त (बिठ्र), प्रयाग, अनन्त है। गंगा भारतीय संस्कृति, धर्म एवं आध्यात्मिक काशी और गंगासागर। आस्थाकी पर्याय हैं। जिसने गंगाको समझ लिया मानो उसने भारतीय संस्कृतिके मर्मको समझ लिया। भारतके अन्य भागोंमें भी, जहाँ सचमुच भौतिक गंगा प्रवाहित नहीं हैं, गंगाके नामसे तीर्थ स्थापित हैं। अपनी कुछ गीत-पंक्तियोंके साथ भगवती गंगाकी इससे भारतीय संस्कृतिमें गंगाकी प्रतिष्ठाका रहस्य जाना यह यशोगाथा, उन्हींके श्रीचरणोंमें अर्पित करता हूँ— जा सकता है। इन गंगा-तीर्थोंकी संख्या प्राय: ६७ है।* भगीरथभूरितपसा या भुवं कथमपि समानीता। इस समीक्षाका दूसरा पक्ष है मुक्तिलाभमें गंगाका मया दुग्भ्यां निपीता सैव सन्ततिवत्सला गंगा॥ योगदान। मुक्ति अथवा मोक्ष धर्मका साध्य है। वेदान्तमें दूषदि कुल्याप्रवाहा मालभूमौ सिन्धुविस्तारा। ब्रह्मसाक्षात्कार (अहं ब्रह्मास्मि)-को ही मुक्ति माना विलक्षणशिल्परचनामादधाना चंचला गंगा॥ गया है और धर्माचार्योंने गंगाको ब्रह्मद्रव कहा है। गहनगिरिशृंखलोद्याने द्रुतं पक्षतिबलैर्यान्ती। पौराणिक आख्यानोंमें गंगा भगवान् विष्णुके चरणोंका मधुरमधुरं स्वनन्ती प्रेक्षिताऽसितकोकिला गंगा॥ निर्णेजन (प्रक्षालनजल) हैं, अत: उन्हें विष्णुपदी क्वचिन्मध्येप्रवाहं गिरिशिलाभी रुद्धजलवेगा। अथवा विष्णुप्रिया कहा गया है। विष्णुके साथ गंगाका किरन्ती सीकरासारं मया दृष्टाऽमला गंगा॥ यही तादात्म्य सिद्ध करता है कि गंगामय होनेका धनुर्यिष्टच्छविं दधती निकामं शिखरिणां मूले। तात्पर्य है विष्णुमय होना, ब्रह्ममय होना। इस प्रकार कपर्दाद् धूर्जटे: पतितेव भुवि चान्द्री कला गंगा॥ भौतिकरूपमें जो गंगा मुक्तिका साधन है, पारमार्थिकरूपमें तरंगैभँगुरावर्तेभ्रीमव्रातेर्दधनादा वही गंगा मुक्तिका साध्य भी है। वह स्वयं मुक्तिका सहजतौर्यत्रिके संलक्ष्यते धृतमर्दला गंगा॥ शिलाः निष्पिष्य बृहतीस्ताश्च करकाकारतां नीत्वा।

युयुत्पुश्चिण्डकेवालोकिता वर्चस्वला गंगा॥

क्वचिल्लीना क्वचित्पीना क्वचिद्दीनाऽद्रिरन्ध्रेषु।

क्वचिन्नृत्यज्जला भङ्ग्या क्वचित्प्रसरज्जला गंगा॥ सितिम्ना कम्बुकुन्देन्दूच्चयं स्तन्यञ्च लघयन्ती।

चुलुकचुलुकैर्मया पीता विमुक्त्यै शीतला गंगा॥

पर्याय है। यह सत्य केवल शब्दप्रमाणसे ही ग्राह्य हो सकता है, प्रत्यक्षादिसे नहीं। गंगासे मुक्तिलाभकी प्राप्ति शब्दप्रमाणपर आधारित है। तर्कबुद्धिसे इस सत्यका साक्षात्कार कर पाना कठिन

है। अनेक दुर्बोध पारलौकिक सत्योंकी भाँति यह सत्य भी केवल श्रद्धाबुद्धिसे अनुभूत किया जा सकता है। श्रुतियों,

* सविस्तर द्रष्टव्य—(कल्याण तीर्थांक) गीताप्रेस, गोरखपुर।

भारतीय प्रतिमा-कलामें बलदेवजीका स्थान

(डॉ० श्रीभगवतीलालजी राजपुरोहित)

भारतीय प्रतिमा-कलामें बलदेवजीका स्थान

संख्या ७]

संकर्षण कृषकोंके देवता हैं। इनके एक हाथमें हल है, जिससे अनाज बोया जाता है और दूसरे हाथमें है मूसल, जो पके धानको कूटनेके काम आता है। तभी वह धान खाद्य बन पाता है। इन दोनों आयुधोंके माध्यमसे अन्नको बोनेसे उपभोगतककी समग्र प्रक्रिया आ जाती है।

पाञ्चरात्रके अन्तर्गत चतुर्व्यूहमें संकर्षणका विशिष्ट महत्त्व है। इसीलिये ईसवी पूर्वसे ही कृष्णके साथ बलदेवकी प्रतिमाएँ भी निर्मित होनी आरम्भ हो गयी थीं। परिणामत: प्रतिमा-लक्षणमें बलदेवकी प्रतिमाके लक्षण

गया है कि बलदेवकी प्रतिमाके हाथमें हल हो, उनके नयन मदघूर्णित हों, कानमें कुण्डल तथा उनका शरीर चन्द्र-सा गौरवर्ण हो। बलदेव तथा कृष्णके मध्य

भी प्राचीनकालसे ही प्राप्त होते हैं। बृहत्संहितामें कहा

एकानंशाकी प्रतिमा बनायी जाय। बलदेवो हलपाणिर्मदविभ्रमलोचनश्च कर्तव्यः। विभ्रत्कुण्डलमेकं शङ्केन्दुमृणालगौरवपुः॥

(बृहत्संहिता ५८। ३६) विष्णुधर्मोत्तरमें कहा गया है कि बलदेवके हाथोंमें

हल तथा मूसल हों, कानमें कुण्डल हो, वर्ण श्वेत तथा अत्यन्त नील वसनके साथ ही मदघूर्णित नयन होने चाहिये।

सीरपाणिर्बलः कार्यो मुसली चैव कुण्डली। **श्वेतोऽतिनीलवसनो** 'अपराजितपुच्छा'में कहा गया है कि बलरामके

हाथोंमें हल-मूसल हों। यदि चतुर्भुज मूर्ति बनायें तो बायें ऊपरके हाथमें हल तथा नीचेके हाथमें शृङ्ख देना चाहिये। गदालाङ्गलधारी च रामो वाथ चतुर्भुजः।

वामोर्ध्वे लाङ्गलं दद्यादधश्शङ्खं सुशोभनम्॥ वैखानस वैष्णवागमके अनुसार बलभद्र मध्यम दशतालके बराबर द्विभुज, त्रिनत, दायें हाथमें मूसल तथा

मदोदञ्चितलोचनः॥

वाममें हल, श्वेताभ, रक्तवसन, ऊपर बँधे केश तथा दायें रेवती देवी हों। 'अथ बलभद्ररामं मध्यमं दशतालमितिं द्विभुजं

त्रिनतं दक्षिणहस्तेन मूसलधरं वामेन हलधरं श्वेताभं रक्तवस्त्रधरमुद्बद्धकुन्तलं दक्षिणे रेवतीं देवीम्॥' राजा भोजके समरांगणसूत्रधारमें बलदेवका कुछ

विस्तारसे विवरण दिया गया है। तदनुसार बलदेवकी मनोहर भुजाएँ हों, कान्तिमान् हों, तालकेतुके समान तेजस्वी हो, वक्षपर वनमाला हो, चन्द्रद्युतिसे सम्पन्न हो, हाथोंमें हल-मूसल हो, चतुर्भुज हो, मुख सौम्य हो, नील

वसन हो, सिरपर बाल एवं मुकुट हो, रागविभूषित हो, प्रतापी हो तथा रेवतीसहित हो। बलस्तु सुभुजः श्रीमांस्तालकेतुर्महाद्युतिः। वनमालाकुलोरस्कः

गृहीतसीरमुसलः कार्यो दिव्यमदोत्कटः। चतुर्भुजः सौम्यवक्त्रो नीलाम्बरसमावृतः॥

मुकुटालंकृतशिरोरोहो रेवतीसहितः कार्यो बलदेवः प्रतापवान्॥

(समराङ्गणसूत्रधार ५७। ३६—३८)

इस समग्र विवरणसे बलरामका स्वरूप स्पष्ट हो

निशाकरसमप्रभः॥

रागविभूषित:।

सिरपर जटामुकुट भी हो सकता है और मुकुट भी। कानोंमें कुण्डल हो, प्रतापी हो तथा मुखपर सौम्यता हो।

जाता है। तदनुसार बलराम गौरवर्णके हों, बहुधा उनके वसन नील हों। पर कभी-कभी लाल भी हो सकते हैं।

नयन मदघूर्णित हों। वक्षपर वनमाला हो। हाथोंमें हल अनन्त प्रतिमाएँ निर्मित हुई हैं। कुछमें उन्हें पानपात्र

भाग ९६

तथा मुसल हों। वे चतुर्भुज भी हो सकते हैं। तब शंख (चषक) लिये भी दर्शाया गया है।

भी हाथमें होना चाहिये। साथमें रेवती भी हों। बलरामकी प्रतिमाके लक्षण शुंगयुगमें ही तय हो गये थे। उस समयकी उनकी प्रतिमाओं के हाथों में हल-इस प्रकार श्रीकृष्णके अग्रज तथा दुर्योधनके

गदागुरु बलरामके स्वरूपका प्राचीन ग्रन्थोंमें विवरण मूसल हैं। इनका वेश यक्ष-मूर्तियोंके समान है। सिरपर दिया गया है, जिसके अनुसार ही प्राय: प्रतिमाएँ निर्मित भारी पगडी, कानोंमें कुण्डल, उत्तरीय तथा अधोवस्त्र,

जिसकी तिकोनी पट्टी टाँगोंके बीचमें लटकती दिखायी होती रहीं। मोरागाँवके कुएँसे प्राप्त षोडाशके लेखमें

पंचवृष्णियोंका उल्लेख है। तथैव मिझमका (नगरी)-गयी है। सम्मुख दर्शन चपटा है। गुप्तयुगीन प्रतिमाओं में के घोसुंडी वैदिका लेखके अनुसार वासुदेव तथा चतुर्भुजी शरीरपर वैजयन्ती माला प्रदर्शित है। इस प्रकार

बलराम-प्रतिमामें नागपूजासे फण, क्षेत्रपाल देवतासे हल, संकर्षणकी पूजा की जाती थी। शुंग-कुषाणयुगीन कई प्रतिमाएँ मथुरा तथा उसके आस-पाससे प्राप्त हुई हैं। यक्षमूर्तियोंसे मुद्गर या गदा ली गयी है। हलके सिरेपर

ज्न्स्री (लखनऊ संग्रहालय)-की प्रतिमा श्ंगकालकी सिंहलांगूलका उल्लेख महाभारतमें है तथा मथुरामें

है। इस प्रतिमाके सिरपर पाँच नागफण छत्र किये हैं। कलाशकक्षहरातके समय प्राप्त होता है। मधुपानरत कुबेरके हलके सिरेपर सिंहलांगल भी है। बलरामको शेषका प्रभावसे बलरामके हाथमें चषक भी है। इस प्रकार कई

अवतार भी माना गया है। इसीलिये उनकी प्रतिमाएँ लक्षणोंको मिलाकर बलरामकी प्रतिमाकी कल्पना की नागचिह्नांकित प्राप्त होती हैं। इस प्रतिमाके बाद तो गयी है, जिसे भागवतोंने भी स्वीकार किया।

खूब विचारकर कार्य करना चाहिये बोधकथा-

किसी वनमें खरनखर नामक एक सिंह रहता था। एक दिन उसे बड़ी भूख लगी। वह शिकारकी खोजमें दिनभर इधर-उधर दौड़ता रहा, पर दुर्भाग्यवश उस दिन उसे कुछ नहीं मिला। अन्तमें सूर्यास्तके समय उसे एक बड़ी भारी गुफा दिखायी दी। वह उसमें घुसा तो वहाँ भी कुछ नहीं मिला। तब वह सोचने लगा,

अवश्य ही यह किसी जीवकी माँद है। वह रातमें यहाँ आयेगा ही, अतः यहाँ छिपकर बैठता हूँ। उसके

आनेपर मेरा आहारका कार्य हो जायगा।

इसी समय उस माँदमें रहनेवाला द्धिपुच्छ नामक सियार वहाँ आया। उसने जब दुष्टि डाली तो उसे

पता लगा कि सिंहका चरण-चिह्न उस माँदकी ओर जाता हुआ तो दीखता है, पर उसके लौटनेके पद-चिह्न नहीं हैं। वह सोचने लगा—'अरे राम! अब तो मैं मारा गया; क्योंकि इसके भीतर सिंह है। अब मैं

क्या करूँ, इस बातका सुनिश्चित पता भी कैसे लगाऊँ?' अन्तमें कुछ देरतक सोचनेपर उसे एक उपाय सुझा। उसने बिलको पुकारना आरम्भ किया। वह कहने

लगा—'ऐ बिल! ऐ बिल!' फिर थोड़ी देर रुककर बोला—'बिल! अरे, क्या तुम्हें स्मरण नहीं है, हमलोगोंमें तय हुआ है कि मैं जब भी यहाँ आऊँ तब तुम्हें मुझे स्वागतपूर्वक बुलाना चाहिये। पर अब यदि तुम मुझे

नहीं बुलाते हो तो मैं दूसरे बिलमें जा रहा हूँ।' इसे सुनकर सिंह सोचने लगा—'मालूम होता है कि यह गुफा इस सियारको बुलाया करती थी, पर आज मेरे डरसे इसकी बोली नहीं निकल रही है। इसलिये मैं

प्रेमपूर्वक इसे बुला लूँ और जब यह आ जाय तब इसे चट कर जाऊँ।'

ऐसा सोचकर सिंहने उसे जोरसे पुकारा। अब क्या था, उसके भीषण शब्दसे वह गुफा गुँज उठी और वनके सभी जीव डर गये। चतुर सियार भी यह कहते हुए भाग चला कि मैं इस वनमें ही रहते-रहते बूढ़ा हो गया, पर मैंने आज-

नक्तिक अधिक कि ता अधिक के लिए के अधिक स्वाप के अधिक स

भगवत्तत्त्वदर्शी सन्त श्रीश्रीशंकर चैतन्य भारती संख्या ७] भगवत्तत्त्वदर्शी सन्त श्रीश्रीशंकर चैतन्य भारती संत-चरित

(श्रीश्रीकृष्णजी पन्त) कविराजजीने उसकी भाषा तथा शैलीकी भूरि-भूरि प्रशंसा की थी।



विद्वान्, महान् सन्त एवं अत्यन्त उच्च आध्यात्मिक भूमिमें स्थित महात्माका उल्लेख करने जा रहे हैं। वे सन्त महात्मा थे श्रीश्रीशंकर चैतन्य भारती। उनका जन्म

खान है। इसमें एक-से-एक महान् विद्वान्, भगवद्भक्त

एवं सन्त-महात्माओंका आविर्भाव हुआ ही करता है।

आज हम इन पंक्तियोंसे ऐसे ही एक महान् दार्शनिक

लिलताघाट-स्थित राजराजेश्वरी-मन्दिरमें था। उनका सन् १९५८ ई० में कैलासवास हो गया। वे वाचस्पति मिश्र-सदृश विद्वानोंके समकक्ष थे।

सन् १९१६ ई० में हुआ था और निवास वाराणसीमें

उन्होंने अपने प्रारम्भिक जीवनमें ख्यातिवाद नामकी पुस्तक लिखी थी, जिसमें ख्याति, आख्याति, असत्ख्याति,

प्रसिद्धार्थख्याति, आत्मख्याति इत्यादि आठ प्रकारकी ख्यातियोंका विशद विश्लेषण है। भाषा सुन्दर, प्राचीन

महान् विद्वान् आचार्योंकी शैलीसे मिलती-जुलती प्रांजल यह सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालयके सरस्वतीभवन-संस्कृत-सीरीजसे प्रकाशित हुई थी। उक्त

कुछ वर्षोंके बाद उन्होंने वेदान्तके महान् ग्रन्थ खण्डनखण्डखाद्यकी टीका लिखी, जो दो भागोंमें प्रकाशित हुई। टीका प्रकाशित सम्पूर्ण टीकाओं

(विद्यासागरी, शांकरी आदि प्राचीन टीकाओं)-में सर्वोत्तम है। उसकी गहराईके सम्बन्धमें प्रसिद्ध पण्डित महामहोपाध्याय श्रीहरिहरकृपालुजीने उस ग्रन्थपर अपनी सम्मति प्रदान करते हुए लिखा था—'न्यायका अच्छा विद्वान् गुरुमुखसे इसका अध्ययन करे तो इसके महान्

विषयोंका अवगमन कर सकता है।'

आप गंगाजीमें प्रातःकाल मूसलस्नान करते थे।

बिना हाथ-पैर मले, शरीर-मर्दन किये, डुबकी लगाकर सीधे अपने स्थानपर बैठ जाते थे—एकान्तमें भगवद्भजन करनेके लिये। निःस्पृह ऐसे कि निकटवर्ती सागकी मण्डीमें जाते,

सागपातके जो डण्ठल पड़े रहते, उन्हींसे जीवन-निर्वाह कर लेते थे। एक समय बीमार पड़नेपर उनके एक बंगाली भक्तने तात्कालिक प्रसिद्ध डॉक्टर दास गुप्ताजीसे स्वामीजीके

करते हुए उन्हें (स्वामीजीको) एक बार देख लेनेका अनुरोध किया। डॉ॰ दास गुप्ता स्वामीजीको देखने आये। उन्होंने

स्वामीजीकी हालत देखकर पूछा—'क्या खाते हैं?' 'साग-पात बेचनेवालोंके पड़े डण्ठल।' उन्होंने फिर

पृछा—'आनन्दमयी माँको जानते हैं?''हाँ जानता हूँ।' 'उनका कभी दर्शन किया है?''दर्शन तो नहीं किया।

उदात्त जीवन, नि:स्पृहता एवं महान् विद्वत्ताका जिक्र

दर्शन कर सकते हैं ? माताजीकी आज्ञा होगी तो।' 'क्या आपकी माताजी भी हैं ?' 'हैं', भगवती राजराजेश्वरीकी ओर संकेत करते हुए उन्होंने कहा। डॉ॰ साहबने फिर

पूछा—'क्या आप माता राजराजेश्वरीसे वार्तालाप करते हैं ?''हाँ, आवश्यकता पड़नेपर करता हूँ।''क्या माता सीरीजके कर्ताधर्ता सर्वस्व पण्डितप्रवर श्रीगोपीनाथजी

राजराजेश्वरी आपसे बोलती हैं।' 'हाँ, बोलती हैं।' ऐसा विद्वान्, निःस्पृह सन्त-महात्मा जो देवी-डॉ० साहब देखकर चले गये। डॉ० साहबने देवताओंसे वार्तालाप करता था, इस घोर कलिकालमें श्रीआनन्दमयी माँसे कहा—'ऐसे महान् विद्वान् और सन्त शायद ही कोई और हो। इस प्रकारकी हालतमें पड़े हुए हैं। आश्चर्य तो यह है कि ऐसे महापुरुष संसारकी दृष्टिसे ओझल ही रहते हैं। महात्मा परमज्ञानी परमभक्त

माता श्रीआनन्दमयीने उनके भोजन, जलपान आदिकी व्यवस्थाके लिये एक व्यक्तिको नियुक्त कर दिया, जो प्रतिदिन माता आनन्दमयी-आश्रम भदैनीसे उनके आहारकी समुचित व्यवस्था करता था।

गौरा गो-चिन्तन— (श्रीमती महादेवीजी वर्मा) [गाय कोई पशु नहीं, गोमाता हैं, परमात्माकी पोषणात्मिका शक्ति हैं। परंतु विचित्र विडम्बना है कि बहुत-से स्वाथीं

मनुष्य उस परम उपकारी प्राणीके प्रति भी क्रूरभाव रखते हैं और अपने निहित स्वार्थकी पूर्तिके लिये उसकी निर्मम हत्यातक कर देते हैं। प्रस्तुत कहानीमें इसी तथ्यका प्रकटन किया गया है। ऐसे स्वार्थी तत्त्वोंसे समाज सावधान रह सके, इसी उद्देश्यसे

इसे यहाँ प्रकाशित किया जा रहा है। यह कहानी हिन्दी साहित्यकी सशक्त हस्ताक्षर महीयसी महादेवी वर्माजीके जीवनका व्यक्तिगत संस्मरण है, जिसे उन्होंने अपने लेखनकी रेखाचित्र शैलीमें शब्दांकित किया है।—सम्पादक] गौरा मेरी बहिनके घर पली हुई गायकी वय:सन्धितक पहुँची हुई बछिया थी। उसे इतने स्नेह और दुलारसे

पाला गया था कि वह अन्य गोवत्साओंसे कुछ विशिष्ट हो गयी थी। बहिनने एक दिन कहा, तुम इतने पश्-पक्षी पाला करती हो। एक गाय क्यों नहीं पाल लेती,

जिसका कुछ उपयोग हो। वास्तवमें मेरी छोटी बहिन श्यामा अपनी लौकिक बुद्धिमें मुझसे बहुत बड़ी है और बचपनसे ही उनकी

कर्मनिष्ठा और व्यवहार-कुशलताकी बहुत प्रशंसा होती रही है, विशेषत: मेरी तुलनामें। यदि वे आत्मविश्वासके साथ कुछ कहती हैं तो उनका विचार संक्रामक रोगके समान सुननेवालेको तत्काल प्रभावित करता है। आश्चर्य

नहीं, उस दिन उनके उपयोगितावाद-सम्बन्धी भाषणने मुझे इतना अधिक प्रभावित किया कि तत्काल उस सुझावका कार्यान्वयन आवश्यक हो गया। वैसे खाद्यकी किसी भी समस्याके समाधानके लिये पश्-पक्षी पालना

गौराको देखा। पुष्ट लचीले पैर, चिकनी भरी पीठ,

लम्बी-सुडौल गर्दन, निकलते हुए छोटे-छोटे सींग,

मुझे कभी नहीं रुचा, पर उस दिन मैंने ध्यानपूर्वक

बदल गयी।

गया। उसका नामकरण हुआ गौरांगिनी या गौरा। गौरा वास्तवमें बहुत प्रियदर्शनी थी। विशेषकर उसकी काली-बिल्लौरी आँखोंका तरल सौन्दर्य तो दृष्टिको बाँधकर स्थिर कर देता था। गायके नेत्रोंमें हिरणके नेत्रों-जैसा चिकत विस्मय न होकर एक आत्मीय

एवं परम नि:स्पृह सन्त थे। उनके भगवत्तत्त्वविषयक

चिन्तनका आभास हम उनकी कृति 'ख्यातिवाद' में पा

भीतरकी लालिमाकी झलक देते हुए कमलकी पंखुड़ियों-जैसे कान, सब साँचेमें ढला हुआ-सा था। गौराको

देखते ही मेरी गाय पालनेके सम्बन्धमें दुविधा निश्चयमें

और परिचारकोंमें श्रद्धाका ज्वार-सा उमड़ आया। उसे गुलाबोंकी माला पहनायी गयी, केशर-रोलीका

बड़ा-सा टीका लगाया गया, घीका दीया जलाकर

आरती उतारी गयी और उसे दही-पेडा खिलाया

गाय जब मेरे बंगलेपर पहुँची, तब मेरे परिचितों

सकते हैं। इनका जीवन आदर्श यतिजीवन था।

विश्वास ही रहता है। उस पशुको मनुष्यसे यातना ही नहीं निर्मम मृत्युतक प्राप्त होती है। परंतु उसकी

भाग ९६

आँखोंके विश्वासका स्थान न विस्मय ले पाता है, न आतंक। महात्मा गांधीने 'गाय करुणाकी कविता है', क्यों कहा, यह उसकी आँखें देखकर ही समझमें

संख्या ७] गौ	रा ४१

आ सकता है। कुछ ही दिनोंमें वह सबसे इतनी	नहाओ का आशीर्वाद फलित होने लगा। कुत्ते-बिल्लियोंने
हिलमिल गयी कि अन्य पशु-पक्षी अपनी लघुता	तो एक अद्भुत दृश्य उपस्थित कर दिया था। दुग्ध-
और उसकी विशालताका अन्तर भूल गये। पक्षी	दोहनके समय वे सब गौराके सामने एक पंक्तिमें बैठ
उसकी पीठ और माथेपर बैठकर उसके कान तथा	जाते और महादेव उनके खानेके लिये निश्चित बर्तन
आँखें खुजलाने लगे। वह भी स्थिर रहकर और	रख देता। किसी विशेष आयोजनपर आमन्त्रित
आँखें मूँदकर मानो उनके सम्पर्क-सुखकी अनुभूतिमें	अतिथियोंके समान वे परम शिष्टताका परिचय देते
खो जाती थी। हम सबको वह आवाजसे नहीं पैरकी	हुए प्रतीक्षा करते रहते। फिर नाप-नापकर सबके
आहटसे भी पहचानने लगी। समयका इतना अधिक	पात्रोंमें दूध डाल दिया जाता, जिसे पीनेके उपरान्त
बोध उसे हो गया था कि मोटरके फाटकमें प्रवेश	वे एक बार फिर अपने-अपने स्वरमें कृतज्ञता ज्ञापन-
करते ही वह बाँ-बाँकी ध्वनिसे हमें पुकारने लगती।	सा करते हुए गौराके चारों ओर उछलने-कूदने
चाय, नाश्ता तथा भोजनके समयसे भी वह प्रतीक्षा	लगते। जबतक वे सब चले न जाते, गौरा प्रसन्न
करनेके उपरान्त रँभा-रँभाकर घर सिरपर उठा लेती	दृष्टिसे उन्हें देखती रहती। जिस दिन उनके आनेमें
थी। उसे हमसे साहचर्यजनित लगाव मानवीय स्नेहके	विलम्ब होता। वह रँभा-रँभाकर मानो उन्हें पुकारने
समान ही निकटता चाहता था। निकट जानेपर वह	लगती, पर अब दुग्ध-दोहनकी समस्या कोई स्थायी
सहलानेके लिये गर्दन बढ़ा देती, हाथ फेरनेपर मुख	समाधान चाहती थी।
आश्वस्त भावसे कन्धेपर रखकर आँखें मूँद लेती।	गौराके दूध देनेके पूर्व जो ग्वाला हमारे यहाँ
अब हर आवश्यकताके लिये उसके पास एक ही	दूध देता था। जब उसने इस कार्यके लिये अपनी
ध्वनि थी। परंतु उल्लास, दु:ख, उदासीनता आदिकी	नियुक्तिके विषयमें आग्रह किया, तब हमने अपनी
अनेक छायाएँ उसकी बड़ी और काली आँखोंमें तैरा	समस्याका समाधान पा लिया। दो-तीन मासके उपरान्त
करती थीं।	गौराने दाना-चारा खाना बहुत कम कर दिया और
एक वर्षके उपरान्त गौरा एक पुष्ट सुन्दर	वह उत्तरोत्तर दुर्बल और शिथिल रहने लगी। चिन्तित
वत्सकी माता बनी। वत्स अपने लाल रंगके कारण	होकर मैंने पशु-चिकित्सकोंको बुलाकर दिखाया। वे
गेरूका पुतला जान पड़ता था। माथेपर पानके आकारका	कई दिनोंतक अनेक प्रकारके निरीक्षण, परीक्षण आदिके
श्वेत तिलक और चारों पैरोंमें खुरोंके ऊपर सफेद	द्वारा रोगका निदान खोजते रहे, अन्तमें उन्होंने निर्णय
वलय ऐसे लगते थे, मानो गेरूकी बनी वत्समूर्तिको	दिया कि गायको सुई खिला दी गयी है, जो उसके
चाँदीके आभूषणोंसे अलंकृत किया गया हो। बछड़ेका	रक्त-संचारके साथ हृदयतक पहुँच गयी है। जब सुई
नाम रखा गया लालमणि, परंतु उसे सब लालूके	गायके हृदयके पार हो जायगी, तब रक्त-संचार रुकनेसे
सम्बोधनसे पुकारने लगे। माता-पुत्र दोनों निकट	उसकी मृत्यु निश्चित है।
रहनेपर हिमराशि और जलते अंगारेका स्मरण कराते	मुझे कष्ट और आश्चर्य दोनोंकी अनुभूति हुई।
थे। अब हमारे घरमें मानो दुग्ध-महोत्सव आरम्भ	सुई खिलानेका क्या तात्पर्य हो सकता है? चारा तो
हुआ। गौरा प्राय: बारह सेरके लगभग दूध देती थी।	हम स्वयं देखभालकर देते हैं, परंतु सम्भव है उसीमें
अत: लालमणिके लिये कई सेर छोड़ देनेपर भी	सुई चली गयी हो, पर डॉक्टरके उत्तरसे ज्ञात हुआ
इतना अधिक दूध शेष रहता था कि आस-पासके	कि चारेके साथ सुई गायके मुखमें ही छिदकर रह
बालगोपालसे लेकर कुत्ते-बिल्लीतक सबपर मानो 'दूधो	जाती है, गुड़की डलीके भीतर रखी गयी सुई ही

गलेके नीचे उतर जाती है और अन्तत: रक्त-उसे दूसरी गायका दूध पिलाया जाता था, जो उसे संचारमें मिलकर हृदयमें पहुँच सकती है। अन्तमें रुचता नहीं था, वह तो अपनी माँका दूध पीना और ऐसा निर्मम सत्य उद्घाटित हुआ, जिसकी कल्पना उससे खेलना चाहता था। अत: अवसर मिलते ही भी मेरे लिये सम्भव नहीं थी। प्राय: कुछ ग्वाले वह गौराके पास पहुँचकर या अपना सिर मार-मार, ऐसे घरोंमें, जहाँ उनसे अधिक दूध लेते हैं, गायका उसे उठाना चाहता था या खेलनेके लिये उसके चारों आना सह नहीं पाते। अवसर मिलते ही वे गुड़में ओर उछल-कूदकर परिक्रमा ही देता रहता। लपेटकर सुई उसे खिलाकर उसकी असमय मृत्यु इतनी हृष्ट-पुष्ट, सुन्दर, दूध-सी उज्ज्वल पयस्विनी निश्चित कर देते हैं। गायके मर जानेपर उन घरोंमें गाय अपने इतने सुन्दर चंचल वत्सको छोड़कर वे पुन: दूध देने लगते हैं। सुईकी बात ज्ञात होते किसी भी दिन निर्जीव-निश्चेष्ट हो जायगी, यह ही ग्वाला एक प्रकारसे अन्तर्धान हो गया। अत: सोचकर ही आँसू आ जाते थे। लखनऊ, कानपुर सन्देहका विश्वासमें बदल जाना स्वाभाविक था। आदि नगरोंसे भी पशु-विशेषज्ञोंको बुलाया। स्थानीय वैसे उसकी उपस्थितिमें भी किसी कानूनी कार्यवाहीके पशु-चिकित्सक तो दिन में दो-तीन बार आते रहे, लिये आवश्यक प्रमाण जुटाना असम्भव था। परंतु किसीने ऐसा उपचार नहीं बताया, जिससे अब गौराका मृत्युसे संघर्ष प्रारम्भ हुआ, जिसकी आशाकी कोई किरण मिलती। निरुपाय मृत्युकी स्मृतिमात्रसे आज भी मन सिहर उठता है। डॉक्टरोंने प्रतीक्षाका मर्म वह जानता है, जिसे किसी असाध्य और मरणासन्न रोगीके पास बैठना पडता हो। जब कहा, 'गायको सेबका रस पिलाया जाय तो सुईपर कैल्शियम जम जाने और उसके न चुभनेकी सम्भावना गौराकी सुन्दर चमकीली आँखें निष्प्रभ हो चलीं और

है, अत: नित्य कई-कई सेर सेबका रस निकाला सेबका रस भी कण्ठमें रुकने लगा, तब मैंने उसके जाता और नलीसे गौराको पिलाया जाता। शक्तिके अन्तका अनुमान लगा लिया। अब मेरी एक ही इच्छा थी कि मैं उसके अन्त समय उपस्थित रह लिये इंजेक्शन दिये जाते। पशुओंके इंजेक्शनके लिये सूजेके समान बहुत लम्बी-मोटी सिरिंज तथा बड़ी सकूँ। दिनमें ही नहीं, रातमें भी कई-कई बार उठकर बोतलभर दवाकी आवश्यकता होती है। अत: वह इंजेक्शन भी अपने-आपमें शल्यक्रिया-जैसा यातनामय हो जाता था, पर गौरा अत्यन्त शान्तिसे बाहर और भीतर दोनोंकी चुभन और पीडा सहती थी। केवल

कभी-कभी उसकी सुन्दर पर उदास आँखोंके कोनोंमें

पहुँचते ही उसकी आँखोंमें प्रसन्नताकी छाया-सी तैरने

लगती थी। पास जाकर बैठनेपर वह मेरे कन्धेपर

अब वह उठ नहीं पाती थी, परंतु मेरे पास

पानीकी दो बूँदें झलकने लगती थीं।

मैं उसे देखने जाती रही। अन्तमें एक दिन ब्रह्ममुहुर्तमें चार बजे जब मैं गौराको देखने गयी, तब जैसे ही उसने अपना मुख सदाकेसमान मेरे कन्धेपर रखा, वैसे ही एकदम पत्थर-जैसा भारी हो गया और मेरी बाँहपरसे सरककर धरतीपर आ रहा। कदाचित् सुईने हृदयको बेधकर बन्द कर दिया। अपने पालित जीव-जन्तुओंकेपार्थिव अवशेष मैं गंगाको समर्पित

करती रही हूँ। गौरांगिनीको ले जाते समय मानो

करुणाका समुद्र उमड़ आया, परंतु लालमणि इसे भी

भाग ९६

अपना मुख रख देती थी और अपनी खुरदरी जीभसे खेल समझ उछलता-कूदता रहा। यदि दीर्घ नि:श्वासका मेरी गर्दन चाटने लगती थी। लालमणि बेचारेको तो शब्दोंमें अनुवाद हो सकता, तो उसकी प्रतिध्वनि सुभाषित-त्रिवेणी

सभाषित-त्रिवेणी

चारों वर्णोंके कर्तव्य

[Duties of the four orders of Society] शूरवीरता, तेज, धैर्य, चतुरता और युद्धमें न

a Ksatriya.

कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः॥ हे परंतप! ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंके तथा

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च

संख्या ७]

श्रद्रोंके कर्म स्वभावसे उत्पन्न गुणोंद्वारा विभक्त किये गये हैं।

The duties of the Brahmanas, the Ksatriyas and the Vaisyas, as well as of the Sudras have

been assigned according to their inborn qualities,

Arjuna. शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।

ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम्॥ अन्त:करणका निग्रह करना, इन्द्रियोंका दमन करना, धर्मपालनके लिये कष्ट सहना, बाहर-भीतरसे

शुद्ध रहना, दूसरोंके अपराधोंको क्षमा करना, मन, इन्द्रिय और शरीरको सरल रखना; वेद, शास्त्र, ईश्वर और परलोक आदिमें श्रद्धा रखना, वेद-शास्त्रोंका अध्ययन-अध्यापन करना और परमात्माके तत्त्वका

अनुभव करना—ये सब-के-सब ही ब्राह्मणके स्वाभाविक कर्म हैं। Subjugation of the mind and senses, endur-

ing hardships for the discharge of one's sacred obligations, external and internal purity, forgiving the faults of others, straightness of mind, senses and behaviour, belief in the Vedas and other

scriptures, God and life after death etc., study and teaching of the Vedas and other scriptures and realization of the truth relating to

God—all these constitute the natural duties of a Brahmana.

दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम्॥

भागना, दान देना और स्वामिभाव—ये सब-के-सब ही क्षत्रियके स्वाभाविक कर्म हैं।

Heroism, fearlessness, firmness, diligence and dauntlessness in battle, bestowing gifts, and lordliness—all these constitute the natural duty of

कृषिगौरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम्। परिचर्यात्मकं कर्म शुद्रस्यापि स्वभावजम्॥ खेती, गोपालन और क्रय-विक्रयरूप सत्य

व्यवहार-ये वैश्यके स्वाभाविक कर्म हैं। तथा सब वर्णोंकी सेवा करना शूद्रका भी स्वाभाविक कर्म है। Agriculture, rearing of cows and honest exchange of merchandise—these constitute the

class). And service of the other classes is the natural duty even of a Sudra (a member of the labouring class).

natural duty of a Vaisya (a member of the trading

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः। स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विन्दति तच्छण्॥ अपने-अपने स्वाभाविक कर्मों में तत्परतासे लगा

हुआ मनुष्य भगवत्प्राप्तिरूप परम सिद्धिको प्राप्त हो

जाता है। अपने स्वाभाविक कर्ममें लगा हुआ मनुष्य जिस प्रकारसे कर्म करके परम सिद्धिको प्राप्त होता है, उस विधिको तु सुन। Keenly devoted to his own natural duty, man attains the highest perfection in the shape of

[श्रीमद्भगवद्गीता १८। ४१ — ४५]

God-realization. Hear the mode of performance whereby the man engaged in his inborn duty शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्। reaches that highest consummation.

व्रतोत्सव-पर्व

१४ "

१५ ,,

१६ ,,

१७ ,,

٧٤ ,,

१९ "

२० ,,

२१ "

सं० २०७९, शक १९४४, सन् २०२२, सूर्य दक्षिणायन, वर्षा-ऋतु, भाद्रपद-कृष्णपक्ष तिथि दिनांक वार नक्षत्र

अशुन्यशयनव्रत।

शतभिषा रात्रिमें २।४२ बजेतक १३ अगस्त द्वितीया रात्रिमें ३।१७ बजेतक शिन तृतीया 🥠 १।४७ बजेतक रिव पू०भा० ,, १।५८ बजेतक

चतुर्थी 🦙 १२।३९ बजेतक | सोम | उ० भा० 🔑 १।३६ बजेतक

पंचमी 🕠 १२।१ बजेतक 🛮 मंगल 🕽 रेवती 🕠 १।४२ बजेतक

अश्वनी 🥠 २।१८ बजेतक

षष्टी 🦙 ११।५२ बजेतक बुध

भरणी ,, ३।२४ बजेतक

सप्तमी 🦙 १२।१४ बजेतक | गुरु शुक्र कृत्तिका रात्रिशेष ,, ४।५८ बजेतक

अष्टमी 꺄 १।६ बजेतक नवमी 🕠 २।२६ बजेतक शनि रोहिणी अहोरात्र

रवि रोहिणी प्रातः ७ बजेतक

सोम

दशमी रात्रिशेष ४।७ बजेतक एकादशी अहोरात्र मृगशिरा दिनमें ९।२१ बजेतक एकादशी प्रात: ६।६ बजेतक मिंगल आर्द्रा 🦙 ११।५५ बजेतक

२२ ,, २३ ,, पुनर्वस् 🦙 २।३२ बजेतक बुध २४ " २५ ,,

द्वादशी दिनमें ८।८ बजेतक त्रयोदशी " १०।८ बजेतक गुरु पुष्य सायं ५।३ बजेतक आश्लेषा रात्रिमें ७।१८ बजेतक चतुर्दशी *»* ११।५२ बजेतक शुक्र

अमावस्या 🤊 १ । १५ बजेतक ,, ९।९ बजेतक शनि मघा

सं० २०७९, शक १९४४, सन् २०२२, सूर्य दक्षिणायन, वर्षा-ऋतु, भाद्रपद-शुक्लपक्ष तिथि वार नक्षत्र

प्रतिपदा दिनमें २।११ बजेतक रिव

द्वितीया 🥠 २।३८ बजेतक सोम उ० फा० " ११।३० बजेतक । २९ हस्त 🥠 ११।५३ बजेतक मंगल

चित्रा 🛷 ११।४८ बजेतक बुध

अष्टमी प्रात: ७। ३५ बजेतक

दशमी रात्रिमें २।५२ बजेतक

द्वादशी " ९।५९ बजेतक बुध

त्रयोदशी 🦙 ७ । ४२ बजेतक

चतुर्दशी सायं ५। ३५ बजेतक

पंचमी 🕠 १२।५४ बजेतक | गुरु षष्ठी 🤊 ११। २७ बजेतक | शुक्र

रवि

सोम एकादशी 🗤 १२।२४ बजेतक 🛮 मंगल 🗸 पृ० षा० 🗤 ४ । ३२ बजेतक

गुरु

शुक्र

पूर्णिमा दिनमें ३।४५ बजेतक | शनि | शतिभषा 🕠 १०।४३ बजेतक | १० 🕠

स्वाती 🦙 ११। १७ बजेतक

विशाखा रात्रिमें १०।२६ बजेतक

अनुराधा 🕠 ९ । १५ बजेतक सप्तमी 🔊 ९ । ४० बजेतक 🛭 शनि

तृतीया 🦙 २।३२ बजेतक चतुर्थी 🕠 १।५८ बजेतक

पु०फा० रात्रिमें १०।३४ बजेतक २८ अगस्त 30

ज्येष्ठा 🦙 ७। ४९ बजेतक

मूल सायं ६।१३ बजेतक

उ०षा० दिनमें २।५३ बजेतक

श्रवण 🕠 १।१८ बजेतक

धनिष्ठा 🥠 ११।५३ बजेतक

38

१ सितम्बर

२ ,,

3 ,,

४

ξ

6

9 ,,

दिनांक कन्याराशि रात्रिशेष ४।४८ बजेसे।

२७ ,,

२६ ,,

ऋषिपंचमी।

मुल सायं ६। १३ बजेतक।

श्रीवामनद्वादशीव्रत।

अनन्तचतुर्दशीव्रत।

सिंहराशि रात्रिमें ७।१८ बजेसे, श्राद्धकी अमावस्या। कुशोत्पाटिनी अमावस्या।

रात्रिमें ८।९ बजेसे, कजरीतीज।

स्वतंत्रतादिवस, मूल रात्रिमें १। ३६ बजेसे।

जया एकादशीव्रत (सबका), सायन कन्याराशिका सूर्य रात्रिमें ११।१५ बजे। कर्कराशि प्रातः ७।५३ बजेसे, प्रदोषव्रत। **भद्रा** दिनमें १०।८ बजेसे रात्रिमें १०।५९ बजेतक, **मृल** सायं ५।३ बजेसे।

भद्रा रात्रिमें २। १४ बजेसे, हरितालिका (तीज) व्रत।

श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, पू०फा० का सूर्य सायं ६। २६ बजे।

वृश्चिकराशि सायं ४। ३९ बजेसे, लोलार्कषष्ठीव्रत।

धनुराशि रात्रिमें ७। ४९ बजेसे, महारविवार-व्रत।

१०।७ बजेसे, **पद्मा एकादशीव्रत** (सबका)।

मीनराशि रात्रिशेष ४।७ बजेसे, पूर्णिमा।

भद्रा दिनमें १२।३ बजेतक। वृषराशि दिनमें ९।४८ बजेसे, श्रीकृष्णजन्माष्ट्रमीवृत, गोकुलाष्ट्रमी। उदयव्यापिनी रोहिणी मतावलम्बी वैष्णवों का श्रीकृष्णजन्म-व्रत। भद्रा दिनमें ३।१६ बजेसे रात्रिशेष ४।७ बजेतक, मिथुनराशि रात्रिमें ८।१० बजेसे।

मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि

भद्रा दिनमें १।५८ बजेतक, तुलाराशि दिनमें ११।५१ बजेसे, वैनायकी

भद्रा ९।४० बजेसे रात्रिमें ८।३७ बजेतक, मृल रात्रिमें ९।१५ बजेसे।

भद्रा दिनमें १। ३८ बजेसे रात्रिमें १२। २४ बजेतक, मकरराशि रात्रिमें

कुम्भराशि रात्रिमें १२। ३६ बजेसे, पंचकारम्भ रात्रिमें १२। ३६ बजे, प्रदोषव्रत।

भद्रा सायं ५। ३५ बजेसे रात्रिशेष ४। ३९ बजेतक, व्रत-पूर्णिमा,

मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि

भद्रा दिनमें २। ३३ बजेसे रात्रिमें १। ४७ बजेतक, मीनराशि

संकष्टी (बहुला) श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय रात्रिमें ९।४ बजे,

मेषराशि रात्रिमें १।४२ बजेसे पंचक समाप्त रात्रिमें १।४२ बजे।

भद्रा रात्रिमें ११।५२ बजेसे, सिंहसंक्रान्ति रात्रिमें ९।४५ बजे, हलषष्ठी

(ललहीछठ), मूल रात्रिमें २। १८ बजेतक।

संख्या ७] कृपानुभूति कृपानुभूति राम सदा सेवक रुचि राखी यदि हमारा मनोभाव शुद्ध है और हम पूर्ण रूपसे अकेले जानेमें मुझे संकोच हो रहा था। वे भी राजी हो भगवान्के प्रति समर्पित हैं तो निश्चय ही प्रभु हमारी इच्छापूर्ति गयीं और हमलोग लीलास्थलपर पहुँच गये। जैसे ही पंडालमें पहुँचे, माइकसे आवाज आ रही थी, 'रामजीकी करते हैं। ऐसा अनेक साधकोंका अनुभव है। देर-सबेर कभी-न-कभी प्रभु कृपा करते ही हैं। मैं अपने लिये तो बस बारात आ रही है। आपलोग स्वागतके लिये तैयार हो इतना ही कह सकती हूँ कि मैं एक बहुत ही साधारण जीव जायँ।' यह रोमांचकारी क्षण मैं कभी भूल नहीं सकती। हूँ, फिर भी भगवान्की कृपाका अनुभव प्रतिदिन करती हूँ। मुझे तो पता भी नहीं कि आज कौन-सी लीला होनी है। उनमेंसे कुछ अनुभूतियोंका वर्णन इस प्रकार है— इस सुखद अनुभवका वर्णन करनेके लिये मेरे पास शब्द (१) मेरे पास द्वादश ज्योतिर्लिंगकी एक साथ फोटो नहीं हैं। बहुत दिनसे थी। समयके अनुसार वह बहुत धुँधली एवं (३) घटना वर्तमान समयके कोरोना कालकी ही है। अस्पष्ट हो गयी। अब मुझे इसकी कमी खलने लगी। मन-मैं पटनामें रहती हूँ और जाड़ेमें मुंबई अपने लड़केके यहाँ ही-मन हमेशा सोचती थी कि मेरे पास एक वैसी ही फोटो चली जाती हूँ। पिछले वर्ष जो आयी तो लॉकडाउनके होती। सावनका महीना आनेपर यह कमी और भी खटकती कारण वापस जाना नहीं हो पाया। यह समय सबके लिये थी। एक सुबह परम आश्चर्य हुआ। जब प्रात: मैंने अपने बहुत ही विकट समय रहा है। मुझे प्रतिदिन सत्संगमें जानेका अभ्यास रहा है। यहाँ यह कमी बहुत खटक रही थी। घरमें घरका दरवाजा खोला तो देखा दरवाजेपर एक बड़ा-सा मानस और भागवतजी हैं, सो उनका पारायण करनेके बाद कैलेन्डर रखा था। खोलकर देखा तो वही मेरा मनचाहा चित्र था। द्वादश ज्योतिर्लिंग चारों ओर और बीचमें भूतभावन वाल्मीकि-रामायण पढ़नेकी इच्छा हुई, पर उपलब्ध नहीं शंकरजीका चित्र। मैंने कैलेन्डरको कई बार उलट-पलटकर थी। यद्यपि काफी समय पहले एक बार पढा था और यह देखा कि शायद रखनेवालेने अपना नाम लिखा हो, पर कोई ज्ञात था कि कई प्रसंग मानससे अलग हैं, पर लम्बे भी ऐसा संकेत न मिला, जिससे मैं जान सकूँ कि किसने अन्तरालके कारण विस्मृति हो गयी थी। मोबाइलमें यूट्यूबपर देखा। कई विद्वानोंके प्रवचनपर दृष्टि गयी, पर कथामें जो रखा है। मेरी प्रसन्नता एवं आश्चर्यकी सीमा न थी। परम श्रद्धासे मैं भोलेनाथके आगे नतमस्तक हो गयी। व्याख्या होती है, उसमें और मूल पाठमें अन्तर होता ही (२) श्रीसीताराम-विवाहके प्रसंगमें मेरी काफी है। अतः मूल पाठ सुनने या पढ़नेकी इच्छा बनी रही और पहले-से ही बहुत रुचि रही है। लगभग बीस वर्ष पहलेकी प्रभुकी परम कृपा। एक दिन मोबाइलमें देखा परमपुज्य स्वामी श्रीअखण्डानन्दजीके आनन्द वृन्दावन आश्रमसे वाल्मीकि घटना है। वृन्दावनसे एक रासलीला-मण्डली पटना आयी हुई थी। जहाँ रासलीला होती थी, वहाँसे मेरा घर बहुत रामायणके मूलपाठका प्रसारण हो रहा है। उल्लेखनीय है कि स्वामी श्रीअखण्डानन्दजी अपने दूर था। लीला रातमें होती थी। वहाँ जानेके लिये मेरे संग न तो कोई साथी ही था और न वाहनकी सुविधा थी। समयके सर्वमान्य सन्त तो थे ही, साथ ही परम विद्वान् भी मन मारके रह जाती थी। प्रभुकी प्रेरणा देखिये। एक दिन थे। वे जितने अधिकारपूर्वक अद्वैत वेदान्तकी सुबोध मेरे एक निकट-सम्बन्धी, जो सब तरहसे सम्पन्न और व्याख्या करते थे, उतने ही अधिकारसे भक्तिशास्त्रकी भी समर्थ थे। उन्होंने मुझसे कहा कि आज हमलोग लीला सरल व्याख्या करते थे। भगवान्की लीला-कथाओंके देखने नहीं जा रहे हैं। यदि तुम जाना चाहो तो हमारी गुणानुवाद तो वे अत्यन्त कुशलतापूर्वक सुन्दर रीतिसे गाड़ीसे जा सकती हो। ड्राइवर समयसे जायगा और ले करते ही थे। ऐसे महात्माकी वाणीका प्रसाद पाते हुए मेरी आयेगा। अन्धा क्या चाहे दो आँखें! मैंने अपनी एक मनोकामना पूर्ण हो रही थी, मैं इस सुखद आश्चर्यसे परिचितसे भी पूछा कि क्या वे जानेके लिये तैयार हैं? अभिभूत थी। अग्रीमती महारानी राजगढ़िया

पढ़ो, समझो और करो (१) जानेसे बहुत विश्राम मिलता है। यदि कदाचित् ऐसा न कर थकान मिटानेका उपाय सकते हों तो नेत्र जहाँ हैं, वहीं उनको स्थिर कर दीजिये,

प्रख्यात उद्योगपित लक्ष्मीपित सिंहानियाने एक बार

स्वामी अखण्डानन्दजी सरस्वतीसे कहा कि मैं जब

ऑफिसमें काम करता हूँ तो थोड़े ही परिश्रमसे थक

जाता हूँ। क्या करूँ?

स्वामी अखण्डानन्दजी भी लक्ष्मीपति सिंहानियाके आचार-व्यवहारसे प्रभावित थे। एक संस्मरणमें

स्वामीजीने लिखा कि लक्ष्मीपति सिंहानियाजी अत्यन्त

सज्जन, सौम्य एवं सरल व्यक्ति थे। अभिमान तो

उन्हें छूतक नहीं गया था। अधिक बोलते नहीं थे। स्वर भी कभी ऊँचा नहीं होता था। जितनेमें सामनेवाला

सुन ले, उतना ही बोलते थे। सदाचारमें उनकी निष्ठा थी। भगवान्के प्रति उनकी आस्था थी। व्यापारकी

कलामें निपुण, उत्साह एवं पौरुषके पक्षपाती तो थे ही, अपने माता-पिता, बडे भाईके प्रति श्रद्धा एवं आदरका भाव रखते थे। किसीके प्रति भी उनके

मुखसे कभी निष्टुर वचन सुननेको नहीं मिला। बड़ी कोमलताका व्यवहार करते थे।

जब लक्ष्मीपति सिंहानियाने अखण्डानन्दजीसे कहा

कि मैं ऑफिसमें थोडे ही परिश्रमसे थक जाता हूँ, तो अखण्डानन्दजीने उन्हें एक प्रक्रिया बतायी, जो उपनिषदों और महाभारतमें है। वह यह है कि बीच-

बीचमें एक-दो मिनटके लिये मुँह बन्द कर लें। दाँत परस्पर सटें नहीं। जीभ, ऊपर-नीचे किसीका स्पर्श

न करे। ज्यों-की-त्यों बनी रहे। एक मिनट भी ऐसा कर लें तो थकान दूर हो जायगी और मनको विश्राम मिलेगा। उन्होंने ऐसा किया और बतलाया कि इससे

मुझे बहुत लाभ हुआ। असलमें बात यह है कि जब जीभ अधरमें निष्क्रिय

हो जाती है तो किसी शब्दका उच्चारण नहीं होता।

शब्दके उच्चारणके बिना मनकी भाग-दौड़ बन्द हो जाती

पुतली दाँये-बायें, ऊपर-नीचे कहीं न जाय। परंतु उनपर कोई दबाव न डाला जाय। क्षणभरके लिये आपका मन

सब तरहके तनावोंसे मुक्त हो जायगा और बहुत विश्राम मिलेगा। आँख बन्द हो या खुली, इसपर ध्यान देनेकी कोई आवश्यकता नहीं है।—प्रो० सन्तोषकुमार तिवारी

पातिव्रत्यका प्रभाव सन् १९२९ ई०की बात है। लक्ष्मीदेवी अपने पति एवं बच्चोंके साथ पितृगृहसे पतिके यहाँ आ रही

थीं। रात्रिका समय था। मुगलसरायमें छोटे बच्चेको जल पिलाने वे उतरीं। पतिदेव सो रहे थे। सहसा

गाड़ी छूट गयी, दौड़कर भी वे उसे पकड़ न सर्कीं। रोने लगीं। उसी समय एक स्टेशनबाबू उनको रोते देख समीप पहुँचे। सब बातें जानकर उन्होंने कहा कि 'तुम मेरे संग चलकर मेरी पत्नीके साथ विश्राम करो!

तुम्हारे पतिको सबेरे तार दे दूँगा।' लक्ष्मीदेवीने विश्वास किया। वे उसके साथ चल पडीं। वहाँ घरमें कोई स्त्री थी नहीं। स्टेशनबाबूने घर

पहुँचते ही अपना दूषितभाव प्रकट किया। अब क्या हो, लक्ष्मीदेवी डरीं। उन्होंने बहाना किया कि मुझे शौच जाना है। वह कामान्ध उनको बाहर जाने देना

अपने गोदमें रखो! मैं शीघ्र आती हूँ।' किसी प्रकार बच्चेको देकर वे बाहर गयीं और दरवाजा बन्दकर बाहरसे साँकल लगा दी।

'तुम यदि द्वार न खोलोगी तो मैं बच्चेको पत्थरपर पटक दूँगा।' उस दुष्टने धमकाया। 'दरवाजा तो मैं सबेरे खोल दूँगी और बच्चेको

नहीं चाहता था। अन्तमें कहना पड़ा—'तुम बच्चेको

लेकर चली जाऊँगी' लक्ष्मीदेवीने कहा। उसने भीतरसे अनेक प्रलोभन दिये, धमकाया और अन्तमें सचमुच एक है निांग्रीपांचनित्रे। उत्भाव क्रेन्सिक्ती में स्ट्रिस् प्रिक्ट अंद्रिक क्रिक्ट श्रीक क्रिक्ट आधीर प्रिक्ति स्ट्रिस् स्ट्रिस् स्ट्रिस् स्ट्रिस् स्ट्रिस् स्ट्रिस् स्ट्रिस् स्ट्रिस्

िभाग ९६

संख्या ७] पढ़ो, समझे	ो और करो ४७
********************************	**************************************
बालकको पत्थरपर पटक दिया था। लक्ष्मीदेवी फूट-	मौसममें दूकानमें भी कुछ आमदनी हो जायगी।'
फूटकर रोने लगीं।	पत्नी प्रसन्न हो गयी।
नीरव रात्रिमें एक नारीका करुण-क्रन्दन सुनकर	आखिर फागुनतक सब मिलाकर सोलह सौ रुपये
समीपके मकानसे एक वृद्ध बाहर आये। उन्होंने सब	इकट्ठे हुए। चैत्र कृष्ण द्वितीयाका मुहूर्त निश्चित हो
पूछकर पुलिसको सूचित किया। पुलिस आयी और	गया। रामनारायणने दूकानका काम कुछ समेट लिया;
वह दुष्ट गिरफ्तार हुआ। प्रात: डॉक्टरोंने मृत शिशुकी	क्योंकि तीर्थयात्रामें जानेपर दूकान बन्द रखनी थी। इसी
परीक्षा करके उसे गाड़ देनेका आदेश दिया। उस	बीच एक दिन गाँवमें बाहरी बस्तीमें आग लग गयी।
देवीने बच्चेके शरीरको दोनों हाथोंमें लेकर भगवान्से	गरीबोंकी झोंपड़ियाँ तो जलीं ही, छोटी-सी गोशालाके
प्रार्थना की—'प्रभो! यदि धर्म-पालनका इसी प्रकार	घासकी वह बागर जल गयी, जो कल ही खुलनेवाली
दण्ड मिलता रहा, तो कौन धर्मको मानेगा! आपपर	थी। गोशालाकी डेढ़ सौ गायोंके खाद्यकी भयानक
कौन श्रद्धा करेगा? मेरे बच्चेको जीवित करो। यदि	समस्या आ गयी। यह समाचार रामनारायणजीकी
पतिके अतिरिक्त किसी पुरुषका मैंने कभी चिन्तन न	धर्मभीरु करुणामयी पत्नीको मिला। घासके अभावमें
किया हो तो यह शिशु सजीव हो जाय।' सबने	गौओंको भूखा रहना पड़ेगा, इस विचारसे उसका हृदय
आश्चर्यसे देखा, बच्चेमें जीवनके लक्षण प्रकट होने	दहल गया। उसने अपने पित रामनारायणजीसे कहा कि
लगे। हृदयमें गति आयी, श्वास चली और उसने नेत्र	'अपनी तीर्थयात्रा या तो इस साल स्थगित कर दीजिये
खोल दिये। देवीके जयनादसे दिशाएँ गूँज उठीं।	अथवा चारों धामोंकी न करके दो ही धामोंकी यात्रा
—रामखेलावन वर्मा	कीजिये और सोलह सौमें-से आधे आठ सौ रुपयेकी
(३)	गायोंके लिये घास खरीद दीजिये। घासके अभावमें
सच्ची तीर्थयात्रा	गायें भूखी रहेंगी।' रामनारायणजीने समझाया कि
रामनारायणजी नामके एक साधारण व्यापारी थे।	'वर्षोंसे तुम्हारी तीर्थयात्राकी इच्छा है और बड़ी कोर-
राजस्थानके छोटेसे शहरमें वे एक साधारण-सी दूकान	कसरसे—बड़ी कठिनाईसे ये रुपये इकट्ठे हो गये हैं।
करते थे। उनकी पत्नी बड़ी श्रद्धालु तथा धार्मिक	फिर जुगाड़ होना कठिन है।' पर उसकी समझमें यह
प्रवृत्तिकी थी। उसका मन बहुत दिनोंसे चारों धामोंकी	बात नहीं आयी। उसने कहा—'तीर्थयात्रा ना होगी तो
यात्रा करने तथा पुण्यस्थलोंपर यथासाध्य कुछ दान	कोई बात नहीं। गाँवमें इस समय कोई घास खरीद दे,
करनेका था। पर पतिकी आर्थिक स्थितिको देखकर	ऐसा आदमी दीखता नहीं है। खुली बागरकी घास
वह कभी कुछ कहती नहीं थी। एक वर्ष उनकी	समाप्त हो गयी थी। कल ही यह बागर खुलनेवाली
दूकानमें पाँच-सात सौ रुपयेकी बचत हुई, तब उसने	थी। मैंने पता लगाया है कि अमुक जाटके पास एक
एक दिन पतिसे अपने मनकी बात कही। पतिने	बागर घास है, और किसीके पास नहीं। वह किसीको
प्रसन्न होकर सहानुभूतिके साथ कहा—'सब मिलाकर	बेच देगा तो फिर तो घास मिलना ही कठिन हो
लगभग दो हजारका खर्च है। अगले साल कुछ	जायगा। अतएव उस घासको खरीदकर गोशालाको दे
और कमाई हो जायगी, तब चले चलेंगे। तुम्हारी	दीजिये। तीर्थयात्रामें अपनेको जो लाभ होता, वह न
यह इच्छा बहुत ही उत्तम है।' पत्नीने कहा—'लगभग	होगा तो कोई बात नहीं, हमारी गोमाता तो भूखों नहीं
चार सौ रुपये तो दस वर्षमें मैंने बचा-बटोरकर रखे	मरेंगी।' रामनारायणजीने पत्नीकी बात मान ली, घास
हैं।' आखिर यह निश्चय हुआ कि 'होलीके बाद	खरीद ली गयी। तीर्थयात्राका विचार एक बार स्थगित-
चलना है। अभी छ: महीने हैं। इस बीच विवाहोंके	सा हो गया। साढ़े आठ सौमें घास खरीदी गयी; साढ़े

सात सौ रुपये बच रहे। (8) सुवास रह गयी इसी बीचमें एक और चीज सामने आ गयी। रामनारायणजीकी पत्नीके पीहरके दूर रिश्तेमें एक भतीजी तब मैं विवाह होनेपर पहले-पहल ही ससुराल आयी थी। छोटी-सी बहूको घरमें इधर-उधर फिरते थी। बहुत गरीब घर था। उसकी एक लड़कीका विवाह होनेवाला था। रुपयोंकी व्यवस्था नहीं हो पायी थी, पर देखकर बड़ोंकी आँखें शीतल होतीं और मेरे आनन्दोल्लासका लडकीका पिता प्रयत्न कर रहा था। वह कलकत्तेमें पार नहीं रहता। स्वर्ग मेरा घर ही था। इतना होनेपर भी नौकरी करता था, वहाँ मालिकोंसे सहायता माँगने गया नववधूके आनन्दके पीछे नये लोगोंका और नये घरका था। वहाँ अकस्मात् हैजा होकर उसका देहान्त हो गया। डर मुझे खूब सताता। काम करते समय सदा यह रामनारायणजीकी पत्नीकी भतीजीपर वज्रपात हो गया। लगता—कहीं भूल तो नहीं हो गयी? पतिकी मृत्यु हो गयी और इधर जवान लड़कीका विवाह बड़ी गर्मीका दिन था। पास ही भड़-भड़ जलती हुई रुकनेकी नौबत आ गयी। आगे डेढ़ साल विवाहका लग्न सिगड़ी रखी थी। गरम-गरम रोटियाँ बनाकर मैं सबको नहीं था। सयानी लड़की थी। यह समाचार जब परस रही थी। पास रखी कटोरीमें घी खतम हो गया था। रामनारायणजीकी पत्नीको मिला तो उसको बडी मार्मिक में बहुत उतावलीमें हाथ धोकर घी लेने लगी। आलमारीमेंसे पीड़ा हुई। उसने सोचा, तीर्थयात्राके लिये बचे हुए साढ़े घीका काँचका पात्र निकालकर जमीनपर रखने लगी तो सात सौ रुपयोंमें कन्याका विवाह हो जायगा। उसने रोते मेरे गीले हाथोंसे वह चिकना पात्र जमीनपर गिर पड़ा। हुए अपने पतिके सामने विचार प्रकट किये। रामनारायणजीका 'हाय रे!' छाती धौंकनी-सी धौंकने लगी और घी हृदय भी बड़ा कोमल था। उन्होंने पत्नीकी बातका समर्थन बहने लगा। पात्रके फूटनेकी आवाज सुनकर मेरी सासजी पूजाघरसे बाहर आयीं और उन्होंने वस्तुस्थितिका परिचय किया। दो महीने बाद विवाहकी तिथि थी। रामनारायणजी प्राप्त किया। पास आकर मेरी पीठपर हाथ फिराते हुए और उनकी पत्नी दोनों उसके घर गये, उसे आश्वासन उन्होंने कहा—'बहू बेटा! घबरा मत। जा शान्तिसे बैठ, दिया और विवाहके मुहूर्तपर दोनोंने वहाँ जाकर अपने रुपयोंसे कन्याका विवाह कर दिया। में सब साफ किये देती हैं।' सहानुभृति और प्रेमभरी वाणीने मेरे हृदयमें एक ऐसा वहाँसे लौटनेपर एक दिन रामनारायणजीकी पत्नीको स्वप्नमें भगवान् नारायणके दर्शन हुए। नारायणने कहा— उत्पात मचाया कि मेरी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह 'तुम्हारी तीर्थयात्रा सफल हो गयी। तुमने गायोंकी रक्षा निकली, मानो मैंने बहुत बड़ा अपराध किया हो। मैं अपने कमरेमें जाकर सिसक-सिसककर रोने लगी। और विधवा अबलाकी कन्याके विवाहमें रुपये लगा दिये। इससे तीर्थयात्राका फल तो तुम्हें मिल ही गया। मेरी सब सफाई हो गयी। काँच चुन लिये गये, जगह प्रसन्नता भी तुमपर बरस रही है। तुम दोनों पति-पत्नीका धो दी गयी और जैसे कुछ हुआ ही न हो, ऐसे घरमें लौकिक और पारमार्थिक भविष्य सुधर गया।' उसने सब कामकाज चलता रहा। किसीने, कभी किसी बातपर जगकर पतिको सपना सुनाया। पतिको भी ठीक वही भी इस घटनाका इशारा करके मुझे नीचा दिखाने अथवा सपना आया था। दोनों गद्गद हो गये। अपने महत्ता-प्रदर्शनका कोई प्रयत्न नहीं किया। घी तो भगवान्की कृपासे उनका कारोबार बढ़ा, बड़ी बह गया, पर उसकी सुवास रह गयी। सम्पत्ति हो गयी। तीर्थयात्रा भी सम्पन्न हुई। पर उनका इस बातको वर्षों बीत गये! मैं अब बहू न रहकर सास जीवन फिर सदाचार, भगवद्भक्ति तथा गरीबोंकी सेवारूप बन गयी हूँ, पर कैसी ? इसे तो मेरी बहू ही बता सकती है। हाँ, अपनी सासके विषयमें मैं इतना ही कहुँगी कि भगवान् भगवत्पूजामें ही बीता। सच्ची तीर्थयात्रा हो गयी। उनके जैसी सास हर बहुको दे।—सुभद्रा मारफतिया -सीताराम शर्मा

मनन करने योग्य संख्या ७] मनन करने योग्य प्राणायामके चमत्कारी परिणाम प्राण परमात्माकी शक्तिका द्योतक है। कौषीतकी घटनाके कारण अनुताप प्रकट किया तो उन्होंने उसे सान्त्वना देते हुए कहा—'वत्स! चिन्ता न करो, तुमने ब्राह्मणोपनिषद्में 'प्राणो ब्रह्म' कहकर प्राणकी महिमा बतलायी गयी है। मुझे वह भाष्य एक बार सुनाया था, अत: मुझे यह सारा-का-सारा याद है।' तदनन्तर शंकर बोलते गये जिस प्राणको इतनी महान् शक्ति है, उसका और वह लिखता गया और वह भाष्य पूर्ववत् पूर्णरूपमें उपयोग करनेकी प्रक्रिया प्राणायाम है। उसके तीन प्रकार हैं—(१) पूरक—नाकके छिद्रोंद्वारा श्वासको भीतर ले तैयार हो गया। यह प्राणायामका प्रताप था और शंकर महान् योगी थे। महर्षि पतंजलिने योगदर्शन (२।५३) जाना, (२) रेचक—श्वासको बाहर निकालना और (३) कुम्भक-श्वासको भीतर या बाहर रोक लेना। में कहा है 'धारणासु च योग्यता मनसः।' अर्थात् पूरकसहित कुम्भक 'आभ्यन्तर' और रेचकसहित 'बाह्य' 'प्राणायामसे मनमें विषयको धारण करनेकी योग्यता कहलाता है। प्राणायामको प्रणवकी उपासना भी माना प्राप्त हो जाती है।' गया है। एक बार बीकानेरमें प्रो० राममूर्ति पधारे। वे प्राणायामसे कठिन-से-कठिन विषयको ग्रहण करने शारीरिक बलके प्रदर्शनोंके लिये परम प्रसिद्ध थे। और उसका स्मरण रखनेकी क्षमता बढ़ जाती है। मोटरकी गतिको रोक देना, लोहेकी भारी साँकलको तोड स्वामी विवेकानन्दकी मेधा-शक्तिका एक विचित्र वृत्त डालना, छातीपर विशाल शिला रखकर हथौड़ोंसे तुड़वाना, है। जब ये जर्मनीमें भारतीय दर्शनप्रेमी प्रोफेसर पाल अपनी छातीपर पैर रखते हुए हाथीको निकलवा देना इत्यादि उनके बायें हाथके खेल थे। ये प्रदर्शन उन्होंने ड्यूसनके घर ठहरे हुए थे, वे एक कविता-पुस्तक पढ़नेमें इतने मग्न हो गये कि उन्हें भान ही नहीं हुआ उस सरकारी विद्यालयमें किये, जो आजकल 'सादूल कि कबसे खड़े हुए प्रोफेसर चायके लिये उनकी पब्लिक स्कूल' कहलाता है और मैं उस समय वहाँ प्रतीक्षा कर रहे हैं। उन्हें देखते ही क्षमा माँगते हुए वे प्रधानाचार्य था। उन्होंने अपने भाषणमें कहा—'ब्रह्मचर्यका कविता सुनाने लगे, जो उन्हें अच्छी लगी थी। उन्होंने पालन और नित्य प्राणायाम करके मैंने यह बल प्राप्त स्वामीजीसे कहा 'आप इस कविताको पहलेसे जानते किया है। भारतीय संस्कृतिके इन सबल साधनोंद्वारा प्रत्येक पुरुष यह शक्ति प्राप्त कर सकता है। उन्होंने होंगे।' स्वामीजीने जवाबमें कहा कि 'मैंने तो इसे आपके यहाँ ही पढा है।' चिकत होकर वे बोले कि मुझे बतलाया कि आभ्यन्तर कुम्भकद्वारा यह कार्य किस 'केवल एक बार ही पढ़नेसे इतनी लम्बी कविता कैसे प्रकार किया जाता है। कण्ठस्थ हो गयी?' स्वामीजीने कहा कि 'ब्रह्मचर्यका उनके इस कथनका मुझपर बड़ा असर हुआ और पालन करनेसे और प्राणायामके अभ्याससे चित्तकी मैंने प्रयोगके लिये 'मोहता मूलचन्द विद्यालय' के एक एकाग्रता प्राप्त होनेपर यह क्षमता आ जाती है।' उपयुक्त छात्रको चुना। मैं उस विद्यालयका संचालन अवैतनिक मन्त्रीके नाते करता था। प्राणायामके सतत भगवान् आदिशंकराचार्यकी स्मरण-शक्ति इतनी प्रबल थी कि वे एक बार जो पुस्तक पढ़ या सुन लेते, अभ्याससे उस छात्रका शरीर इतना सुदृढ़ और सबल हो वह उन्हें ज्यों-की-त्यों याद बनी रहती। उनके शिष्य गया कि विद्यालयके वार्षिक उत्सवमें लोहेकी भारी जंजीर तोड़कर और छातीपर शिला तुड़वाकर उसने दर्शकोंको पद्मपादका वेदान्त-भाष्य मामाके घरमें आग लगनेपर भस्म हो गया था। जब शिष्यने उनके समक्ष इस विस्मय-विमुग्ध कर दिया।—श्रीयुगलसिंहजी खीची

गीताप्रेस-शताब्दीवर्ष-समारोहका भव्य शुभारम्भ गीताप्रेसकी विकास-यात्रापर सारगर्भित रूपरेखा प्रस्तुत

गीताप्रेसकी स्थापना १९२३ ई०में सनातन धर्मशास्त्रोंके प्रचार-प्रसारके माध्यमसे भारतीय-संस्कृति एवं संस्कारोंकी करते हुए शुभकामनाएँ व्यक्त कीं। रक्षाके निमित्त की गयी थी। भगवत्कृपासे यह संस्था

अपनी ९९ वर्षकी सफल यात्राके अनन्तर अपने १००वें

प्रति आत्मीयता व्यक्त करते हुए इसके प्रयासोंकी

अत्यन्त सराहना की। उन्होंने कहा कि किसी भी महान

वर्षमें प्रवेश करते हुए सतत गतिशील है। इसी उपलक्ष्यमें

भारतके राष्ट्रपति महामहिम श्रीरामनाथजी कोविन्दद्वारा

मुख्य परिसरमें आयोजित गीताप्रेस शताब्दीवर्ष समारोहका

औपचारिक उद्घाटन किया गया। इस अवसरपर राष्ट्रपति महोदयके साथ उनकी धर्मपत्नी श्रीमती सविताजी

कोविन्द, उत्तरप्रदेशकी राज्यपाल महामहिम श्रीमती

आनन्दीबेनजी पटेल एवं उत्तरप्रदेशके माननीय मुख्यमन्त्री योगी श्रीआदित्यनाथजीकी गरिमामयी उपस्थिति भी

भव्य द्वारका अवलोकन किया, तत्पश्चात् उन्होंने गीताप्रेस लीलाचित्र-मन्दिरमें सनातन शास्त्रोंके आधारपर बने

सुन्दर कलात्मक चित्रोंको अत्यन्त मनोयोगसे देखा। वे यह जानकर भावुक हो गये कि गीताप्रेसके भव्य द्वार एवं

लीलाचित्र-मन्दिरका उद्घाटन आजसे ६७ वर्ष पूर्व

भारतके प्रथम राष्ट्रपति स्वनामधन्य महामहिम डॉ॰

श्रीराजेन्द्रप्रसादजीके करकमलोंसे हुआ था और आज

भारतके चौदहवें राष्ट्रपतिके रूपमें उन्हें यहाँ आनेका

अवसर मिला है। राष्ट्रपति महोदयने स्वर्णाक्षरोंमें लिखित

भगवद्गीतासहित दुर्लभ पाण्डुलिपियोंका भी अत्यन्त

रुचिके साथ अवलोकन किया। इसके बाद गीताप्रेस

ट्रस्टबोर्डके सदस्यों एवं पदाधिकारियोंके साथ राष्ट्रपति

महोदयका फोटो सेशन आयोजित हुआ। तत्पश्चात्

राष्ट्रपति महोदय एवं सभी विशिष्ट अतिथिगण मंचासीन

हुए और राष्ट्रगानके साथ मुख्य कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ।

पीठाधीश्वर योगी श्रीआदित्यनाथजीने अपने ओजस्वी भाषणमें

आशा एवं विश्वासके साथ कहा कि पच्चीस वर्ष बाद जब

राष्ट्र अपनी आजादीकी १००वीं वर्षगाँठ मनायेगा, तब

गीताप्रेस निश्चय ही अपनी १२५वीं वर्षगाँठ आयोजित करेगा।

इसके बाद उत्तरप्रदेशकी राज्यपाल महामहिम

सर्वप्रथम उत्तरप्रदेशके मुख्यमन्त्री एवं श्रीगोरक्ष-

राष्ट्रपति महोदयने सर्वप्रथम गीताप्रेसके कलात्मक

कार्यक्रमको शोभायमान कर रही थी।

विगत ४ जुनको अपराह्म-कालमें गीताप्रेसके गोरखपुरस्थित रामचरित हो या कुरुक्षेत्रका महाभारत, हनुमानुजीके बिना

कार्यके पीछे दैवीय शक्ति अवश्य होती है, चाहे

कुछ नहीं हो सका। इसी प्रकार गीताप्रेसको आगे ले

जानेमें भी भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारकी अमिट

भूमिका रही। राष्ट्रपति महोदयने सुझाव दिया कि कई

देशोंमें गीताप्रेसके प्रकाशन अत्यन्त लोकप्रिय हैं। मैं चाहता हूँ कि गीताप्रेसकी शाखाएँ उन सभी देशोंमें

स्थापित की जायँ; क्योंकि हमारा साहित्य हमारे संस्कारों,

विचारों और परम्पराओंको आगे बढानेका बहुत बडा

स्रोत है। इस कार्यके लिये उन्होंने राष्ट्रपति कार्यालय, विभिन्न दूतावासों और विभागोंसे हर प्रकारकी सहायताका

संस्थापक सेठजी श्रीजयदयालजी गोयन्दका, कल्याणके

आदिसम्पादक श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार एवं यहाँसे प्रकाशित

साहित्यके प्रति विशेष श्रद्धाभाव परिलक्षित हो रहा था।

उन्होंने बताया कि वे 'कल्याण' पत्रिकाके नियमित

पाठक हैं तथा इसमें प्रकाशित होनेवाले नवीन प्रकाशनोंकी

शताब्दीवर्षके उपलक्ष्यमें विशेषरूपसे प्रकाशित आर्टपेपरपर

छपी चित्रबहुल श्रीरामचरितमानसकी विशिष्ट प्रति एवं

गीतातत्त्वविवेचनीके नवीन विशिष्ट संस्करणका भी विमोचन

किया गया तथा इनकी एक-एक प्रति महामहिम राष्ट्रपति

महोदय एवं महामहिम राज्यपाल महोदयाको सादर भेंट

की गयी। तदुपरान्त राष्ट्रगानके साथ कार्यक्रम सम्पन्न हुआ।

विभिन्न उच्चाधिकारी, गीताप्रेसके ट्रस्टीगण, पदाधिकारी

एवं कर्मचारी, विद्वान् एवं सनातनधर्मप्रेमी अतिथिगण

उत्साहपूर्वक सम्मिलित हुए। भगवत्कृपासे यह ऐतिहासिक

कार्यक्रम अत्यन्त उत्साहपूर्ण एवं शान्त वातावरणमें

कार्यक्रममें नगरके अनेकानेक गणमान्य अतिथि,

इस अवसरपर माननीय मुख्यमन्त्रीजीके द्वारा गीताप्रेस

सुचनापर भी सतत दुष्टि रखते हैं।

पुरे प्रवासकालमें राष्ट्रपति महोदयका गीताप्रेसके

आश्वासन भी दिया।

भीमार्वी अभुना क्रीडेल्वी र उडे हो र अपने साम्भी / उडे द्रोधुमुर्गी ha नेना सद के MYED सम्प्रा र भी LOVE BY Avinash/Sh

राष्ट्रपति महोदयने अपने सम्बोधनमें गीताप्रेसके

गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित कर्मकाण्डकी प्रमुख पुस्तकें

[11 सितम्बर रविवारसे पितृपक्ष (महालया) आरम्भ हो रहा है]

नित्यकर्म-पूजा-प्रकाश, सजिल्द (कोड 592)—इस पुस्तकमें प्रातःकालीन भगवत्स्मरणसे लेकर स्नान, ध्यान, संध्या, जप, तर्पण, बिलवैश्वदेव, देव-पूजन, देव-स्तुति, विशिष्ट पूजन-पद्धित, पञ्चदेव-पूजन, पार्थिव-पूजन, शालग्राम-महालक्ष्मी-पूजनकी विधि है। मूल्य ₹७० (गुजराती, तेलुगु एवं नेपाली भाषामें भी उपलब्ध)।

अन्त्यकर्म-श्राद्धप्रकाश (कोड 1593) ग्रन्थाकार—इस ग्रन्थमें मूल ग्रन्थों तथा निबन्ध-ग्रन्थोंको आधार बनाकर श्राद्ध-सम्बन्धी सभी कृत्योंका साङ्गोपाङ्ग निरूपण किया गया है। मूल्य ₹200

जीवच्छ्राद्धपद्धित (कोड 1895)—प्रस्तुत पुस्तकमें जीवित श्राद्धकी शास्त्रीय व्यवस्था दी गयी है, जिसके माध्यमसे व्यक्ति अपने जीवित रहते ही मरणोत्तर क्रियाका सही सम्पादन करके कर्म-बन्धनसे मुक्त हो सके। मूल्य ₹80

गया-श्राद्ध-पद्धित (कोड 1809)—शास्त्रोंमें पितरोंके निमित्त गया-यात्रा और गया-श्राद्धकी विशेष महिमा बतायी गयी है। आश्विन मासमें गया-यात्राकी परम्परा है। प्रस्तुत पुस्तकमें गया-माहात्म्य, यात्राकी प्रक्रिया, श्राद्धका महत्त्व तथा श्राद्धकी प्रक्रियाको सांगोपांग ढंगसे प्रस्तुत किया गया है। मूल्य ₹40 गरुडपुराण-सारोद्धार (कोड 1416)—श्राद्ध और प्रेतकार्यके अवसरोंपर विशेषरूपसे इसके

श्रवणका विधान है। यह कर्मकाण्डी ब्राह्मणों एवं सर्व सामान्यके लिये भी अत्यन्त उपयोगी है। मूल्य ₹50 त्रिपिण्डी श्राद्ध (कोड 1928)—अपने कुल या अपनेसे सम्बद्ध अन्य कुलमें उत्पन्न किसी जीवके

प्रेतयोनि प्राप्त होनेपर उसके द्वारा संतानप्राप्तिमें बाधा या अन्यान्य अनिष्टोंकी निवृत्तिके लिये किया जानेवाला श्राद्ध त्रिपिण्डी श्राद्ध है। इस पुस्तकमें त्रिपिण्डी श्राद्धका सविधि वर्णन किया गया है। मूल्य ₹20

सन<mark>्ध्योपासनविधि एवं तर्पण बलिवैश्वदेव-विधि (कोड 210) पुस्तकाकार</mark>—नित्य सन्ध्या-उपासना एवं तर्पण बलिवैश्वदेवविधिका मन्त्रानुवादके साथ सुन्दर प्रकाशन। मूल्य ₹10 [तेलुगुमें भी उपलब्ध]।

पंचांग-पूजन-पद्धित [कुशकण्डिका-होमविधिसिहत] (कोड 2228)—प्रस्तुत पुस्तकमें पंचांग-पूजन कर्मके अन्तर्गत मुख्यरूपसे कलशस्थापन, पुण्याहवाचन, रक्षाविधान, नवग्रहपूजन तथा नान्दीमुख श्राद्ध—इन पाँच प्रधान कर्मोंका विवेचन किया गया है। इसमें मन्त्रभाग संस्कृतमें हैं और निर्देश हिन्दीमें हैं। इसमें वैदिक मन्त्रोंके साथ-साथ पौराणिक मन्त्र भी दिये गये हैं। इस पुस्तकमें परिशिष्टके अन्तर्गत सुविधाकी दृष्टिसे कुशकण्डिकासिहत होमविधि इत्यादि विषयोंका भी समावेश किया गया है। मूल्य ₹20

श्रीमद्रोस्वामी तुलसीदासजी-जयन्तीके अवसरपर पठनीय—तुलसी-साहित्य

[श्रीतुलसी-जयन्ती 4 अगस्त गुरुवारको है]								
कोड	पुस्तक-नाम	मू०₹	कोड	पुस्तक-नाम	मू०₹	कोड	पुस्तक-नाम	मू०₹
105	विनय-पत्रिका — भावार्थसहित	60	108	कवितावली—भावार्थसहित	25	112	हनुमानबाहुक — भावार्थसहित	5
1701	विनय-पत्रिका, सजिल्द "	80	109	रामाज्ञाप्रश्न— "	15	113	पार्वती-मंगल— "	6
106	गीतावली— "	60	110	श्रीकृष्ण-गीतावली—"	10	114	वैराग्य-संदीपनी एवं	
107	दोहावली— "	25	111	जानकी-मंगल— "	10		बरवै रामायण— "	5

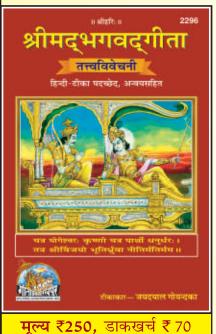


LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT LICENCE No. WPP/GR-03/2020-2022

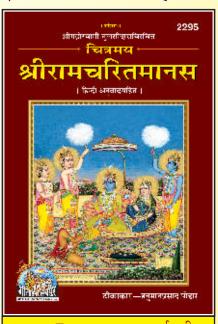
शताब्दी-वर्ष-समारोहके अवसरपर प्रकाशित विशिष्ट ग्रन्थ

गीताप्रेसने अपने आध्यात्मिक सत्साहित्यके प्रकाशनकी सौ वर्षकी यात्रा पूरी करनेके उपलक्ष्यमें 4 जून 2022 को शताब्दी-वर्ष-समारोहका आयोजन बड़े हर्षोल्लासके साथ किया। इस समारोहमें पधारे भारतके राष्ट्रपति महामहिम श्रीरामनाथ कोविंद, उत्तरप्रदेशके राज्यपाल महामहिम आनन्दीबेन पटेलकी गरिमामयी उपस्थितिमें उत्तरप्रदेशके यशस्वी मुख्यमंत्री श्रीयोगी आदित्यनाथजीने 'गीता-तत्त्वविवेचनी (हिन्दी टीका, पदच्छेद, अन्वयसहित) एवं 'चित्रमय श्रीरामचिरतमानस'—इन दो ग्रन्थोंका विमोचन किया साथ ही इन दोनों ग्रन्थोंकी एक-एक प्रति माननीय राष्ट्रपति महोदय तथा माननीया राज्यपाल महोदयाको सादर भेंट भी किया।

दोनों ग्रंथ मांगलिक कार्यक्रमोंमें उपहारस्वरूप देनेके लिये उपयोगी हैं।



श्रीमद्भगवद्गीता तत्त्वविवेचनी—
हिन्दी-टीका, पदच्छेद, अन्वयसहित, ग्रन्थाकार (कोड 2296)—प्रस्तुत पुस्तकमें गीताप्रेसके संस्थापक श्रीजयदयालजी गोयन्दकाद्वारा प्रणीत 'गीता-तत्त्वविवेचनी (कोड 2)—में पाठकोंकी विशेष माँगपर अलगसे प्रकाशित 'श्रीमद्भगवद्गीता—पदच्छेद, अन्वय (कोड 17)—के पदच्छेद और अन्वयको यथास्थान समायोजित करके प्रकाशित किया गया है। इससे पाठकोंको प्रत्येक श्लोकके प्रत्येक शब्दका अर्थ समझनेमें आसानी होगी। मृल्य ₹250



मूल्य ₹ 1600, डाकखर्च फ्री

चित्रमय श्रीरामचरितमानस (कोड 2295) [ग्रन्थाकार, सटीक] चित्रमय श्रीमद्भगवद्गीता (कोड 2267) की लोकप्रियताको देखते हुए भगवान् श्रीरामकी लीलाका दर्शन करानेके उद्देश्यसे 300 से अधिक लीलाके रंगीन चित्रोंके साथ चार रंगोंमें आर्ट पेपरपर पहली बार प्रकाशित हुआ है। मूल्य ₹1600

खुल गया है — बंगालके संतरागाछी रेलवे स्टेशनके प्लेटफार्म नं० 1 पर गीताप्रेस, गोरखपुरका पुस्तक स्टॉल, मोबाइल नं. 7503167812

booksales@gitapress.org थोक पुस्तकोंसे सम्बन्धित सन्देश भेजें।
gitapress.org सूची-पत्र एवं पुस्तकोंका विवरण पढ़ें।
कूरियर/डाकसे मँगवानेके लिये गीताप्रेस, गोरखपुर—273005
book.gitapress.org/gitapressbookshop.in

If not delivered; please return to Gita Press, Gorakhpur—273005 (U.P.)